एक
श्रावणी
दोपहरी की धूप

फणीश्वरनाथ रेणु

संकलन एवं सम्पादन
भारत यायावर

श्रीमती पद्मा रेणु
के
योग्य

मैं रात को लिखता हूँ। जिस रात लिखना होता है, बहुत हल्का भोजन लेता हूँ। बिस्तर पर लेटकर, पेट के नीचे तकिया दबाकर लिखता हूँ। इसी सम्बन्ध में एक मजेदार बात। मैं जब लिखता हूँ, तो रात बहुत देर तक लिखता हूँ, जब तक मन की भड़ास नही निकल जाती। फिर दिन चढे तक सोता रहता हूँ। नौ, दस बजे तक। ऐसी हालत मे मोहल्लेवाले कहते हैं—'पियक्कड है। अरे, जरूर रात मे पी ली होगी। देखो इतना दिन चढ गया, अब तक सो रहा है।' जिस रात मैं सच में पी लेता हूँ, लिखना-पढना नही होता है। चुपचाप सो जाता हूँ। सुबह तड़के ही उठकर टहलने निकल जाता हूँ। मन मेरा उदास रहता है। मोहल्लेवाले खुश होकर कहते हैं—'देखो, देखो! आदमी सुधर रहा है। लगता है पीना छोड़ दिया है। देखा, कैसे सुबह-सुबह टहलने निकला है।' वे मुस्कराते हैं और मैं मन-ही-मन कुढ़ता हूँ।

फणीश्वरनाथ रेणु

फणीश्वरनाथ रेणु के अभी तक तीन कहानी-सग्रह प्रकाशित हैं—ठुमरी (1959), आदिम रात्रि की महक (1966), और अगिनखोर (1973), जिनमें कुल चौंतीस कहानियाँ हैं। ये तीनो संग्रह खुद रेणु द्वारा ही सकलित एवं सम्पादित हैं। इन तीनो संग्रहो की कहानियो के अलावा ढेर सारी कहानियाँ पत्रिकाओ मे रह गयी—रेणु ने उन्हें इन तीनो संग्रहो मे नही रखा। इसके मूल मे शायद कारण यह हो कि वे इन कहानियो को महत्त्वपूर्ण नही मानते हो या हो सकता है संग्रह तैयार करते वक्त इन कहानियो पर उनकी दृष्टि नही पडी हो। पर आज जबकि रेणु को दिवगत हुए कई वर्ष हो चुके हैं, साथ ही उनके महत्त्व को हिन्दी साहित्य ने उनके तमाम अन्तर्विरोधो के बावजूद स्वीकार कर लिया है—उनकी तमाम असंकलित रचनाओ की खोज होनी चाहिए एव उनका पुस्तक-रूप मे प्रकाशन। यह खोजीराम इस 'चाहिए' की आवश्यकता को प्रारम्भ से ही महसूस करता और रेणु की रचनाओ की खोज मे लगा रहा। खोजी प्रवृत्ति ने उसे यायावर बनाये रखा। इस यायावर खोजीराम की खोज का लघु परिणाम हैं रेणु की ये असंकलित कहानियाँ अर्थात् रेणु की कहानियों का चौथा संग्रह—'एक श्रावणी दोपहरी की धूप'।

प्रस्तुत संग्रह में रेणु की कहानियाँ संकलित हैं। संग्रह की पहली कहानी 23 अप्रैल 1945 के 'साप्ताहिक विश्वमित्र' मे प्रकाशित है एवं

अन्तिम कहानी 1973 में। इस तरह इन कहानियों का रचनाकाल '45 से '73 के बीच का है। '45 में रेणु पच्चीस वर्ष के युवक थे एवं कथा-लेखन की शुरुआत कर रहे थे एवं '73 उनकी बुजुर्गियत के दिन थे। पर रेणु की कहानियों में कोई क्रमिक विकास या ह्रास नहीं दिखलायी पड़ता। उनके प्रारम्भ और अन्त में कोई खास फर्क नहीं है। जो वस्तुगत विविधता, भाषिक-संरचना के तत्त्व, ध्वनियों के प्रति, लय के प्रति रुझान, प्रयोग-धर्मिता—रेणु के पिछले संग्रहों की कहानियों में पाठकों ने देखे हैं, उनसे अलग ये कहानियाँ नहीं हैं। पर ये उन तमाम चीजों को और भी विस्तार देती हैं।

रेणु की इन कहानियों के अतिरिक्त भी एक संग्रह-भर कहानियाँ हैं, खोजीराम जिन्हें संग्रहीत करने हेतु यायावर बना हुआ है। आशा है अगला संग्रह अर्थात् रेणु की कहानियों का पाँचवाँ संग्रह भी शीघ्र ही प्रकाशित हो सकेगा।

इन कहानियों के संकलन में डॉ. चन्द्रेश्वर कर्ण, राजेन्द्र प्रसादसिंह, डॉ रामवचन राय, शिवेन्द्र नारायण के सहयोग के प्रति आभार। और मित्रवर सत्येन्द्र कुमार के प्रति भी, जो लगातार इस खोजीराम को उत्प्रेरित करते रहे। शीला सन्धूजी और सत्यप्रकाशजी के प्रति भी हार्दिक आभार—जो रेणु की कृतियों के प्रकाशन में अत्यधिक रुचि दिखलाते रहे, और खोजीराम की यायावरी को बढ़ावा देते रहे।

हजारीबाग, 6.2.'84 भारत यायावर

क्रम

न मिटनेवाली भूख

आठ बज रहे थे। दीदी बिछौने पर पड़ी चुपचाप टुकुर-टुकुर देख रही थी —छत की ओर। उसके बाल तकिये पर बिखरे हुए थे, इधर-उधर लटक रहे थे। एक मोटी किताब, नीचे चप्पल के पास, औंधी मुँह गिरकर न जाने कब से पड़ी हुई थी। बुधनी की माँ, दबे पाँव कमरे के पास आती थी और झाँककर चुपचाप लौट जाती थी। आठ बजे तक बिछौने पर रोगिनी की तरह चुपचाप पडा रहना, मौन साधे, दयनीय मुद्रा बनाकर, टकटकी लगाकर देखना आदि बातें कुछ ऐसे वातावरण की सृष्टि कर रही थी कि बुधनी की माँ कुछ पूछने की हिम्मत नही कर पाती थी। बेचारी हाथ मे झाड़ू लेकर बार-बार लौट आती थी। अन्त मे छोटी दीदी (मिस फ्लोरा) से जाकर वह बोली, "दीदी के का भैल है, अब ले पड़ल बाडी। आखिर···"

"बडी मुश्किल है बुधनी की माँ। कल से ही उनका यह हाल है। न खाती है, न पीती है और कुछ बोलती भी तो नही। पूछने पर कहती है कि कुछ हुआ ही नही है। ज्यादे कुछ पूछने की हिम्मत भी तो नही होती।" मिस फ्लोरा ने बालो मे कंघी चलाते-चलाते ही कहा।

"सुबहे से झाड़ू देवे ले ठाढ हई। तनी चलिके··" बुधनी की माँ बात पूरी भी नही करने पायी थी कि दीदी की प्रिय छात्रा—चंचला किशोरी 'मदालसा' मुँह लटकाये, आकर खडी हो गयी और जिज्ञासु दृष्टि से मिस फ्लोरा और बुधनी की माँ को देखने लगी। बुधनी की माँ खिलकर बोली,

"एहे तो कल्ली ! चल त रानी ! देख तोहर दीदी के का भैल है !"

मदालसा चुपचाप दीदी के कमरे में दाखिल हुई। दीदी अपलक दृष्टि से उसे देखती रही। बुधनी की माँ चौखट के पास ही खड़ी रही।

"दीदी !" मदा ने बहुत देर तक चुप रहने के बाद पुकारा।

"हूँ !"

"कैसा जी है दीदी ?"

"हूँ ..." दीदी ने बिना हिले-डुले ही उत्तर दिया।

बुधनी की माँ ने पहले बरामदे पर एक-दो बार 'छप-छप' झाड़ू चलाया, फिर डरते-डरते कमरे मे आकर हल्के हाथो झाड़ू देने लगी। मदालसा, दीदी के टेबल पर बिखरी हुई किताबों को सजाकर रखने लगी। कलैण्डर मे तारीख बदलकर, दिन भी बदल डाला उसने—दीदी चुपचाप देख रही थी।

"क्यों आज सोमवार हो गया न ?" दीदी ने अचकचाकर पूछा। मदालसा डरी, एक बार कलैण्डर की ओर देखकर वह बोली, "जी नही।" वह दिन बदल रही थी कि फिर याद कर रुकी और बोली, "जी हाँ, आज सोमवार ही है। कल रविवार, आज सोमवार..."

"सोमवार हो गया ?" दीदी उठकर बैठ गयी, बोली, "तो बारातवाले चले गये ?"

"हूँ, चार बजे और चल गैलन सब।" बुधनी की माँ झाड़ू के तिनकों को सजाती हुई बोली।

दीदी डरते-डरते बिछौने के पासवाली खिड़की को जो स्कूल की ओर खुलती थी—खोलने लगी। खिड़की खोलकर उसने देखा—स्कूल खाली पड़ा है। दो दिनों से बन्द खिड़की जो खुली तो कमरे में एक ताजी हवा आकर खेलने लगी। वह अँगड़ाई लेकर उठी, उसके चेहरे की गम्भीरता तत्क्षण ही दूर हो गयी। मदालसा के ओठो पर भी मुस्कान की एक सरल रेखा दौड़ गयी, बुधनी की माँ को कुछ हिम्मत हुई, पूछ बैठी, "कैसन तबियत है दीदी ?"

"अच्छी है, तू जल्दी से जाकर स्कूल के कमरों को झार-बुहार दे। न हो तो फुलिया को भी बुला लेना। भगेलू से कह दो—गाड़ी पर आज सरजू

जायेगा। भगेलू क्लासों मे बेच सजाकर रखेगा। "जाओ!" कहती हुई वह तौलिया और साड़ी लेकर 'बाथरूम' की ओर चली। मदालसा ने टोका, "दीदी!"

"क्या है री!" दीदी ने रुककर मुस्कराते हुए पूछा।

"आप नही गयी, इन्दु बहुत रोती थी, कहती थी—दीदी से भेंट नही हो सकी।" पेन्सिल-कटर मे पेन्सिल डालकर घुमाते हुए मदालसा बोली। दीदी ने प्रत्युत्तर मे सिर्फ एक लम्बी निःश्वास छोड़ दी।

"आप तो उसे उपहार देने के लिए एक चित्र बना रही थी न?"

"बना तो रही थी, पर अधूरा ही रह गया। अच्छा भेज दूंगी,··· मुझसे बडी भारी गलती हो गयी मदा, जाने के दिन उससे मिल नही पायी।" कहती हुई दीदी धीरे-धीरे चली गयी।

मदा वही बैठकर दीदी का 'एलबम' देखने लगी।

श्रीमती उषा देवी उपाध्याय—उर्फ दीदीजी। शहर के गर्ल्स मि. ई स्कूल की प्रधानाध्यापिका। मझोले कद की, दुबली-पतली, सुन्दरी विधवा युवती। जिस दिन से स्कूल मे प्रधानाध्यापिका होकर आयी, स्कूल की उन्नति मे चार-चाँद लग गये। छात्राओं की संख्या चौगुनी हो गयी। परीक्षाफल सुन्दर होने लगा। स्कूल को हाईस्कूल बनाने की चर्चा होने लगी। उस दुबली-पतली मृदुभाषिणी 'दीदी' की मीठी चपत जिस बालिका ने एक बार खा ली, वह उसकी चेरी हो गयी। बालिकाओ और किशोरी छात्राओं की बात तो दूर, अध्यापिकाएँ भी उसके स्नेह की भूखी रहती। बुधनी की माँ उसकी प्राइवेट-सेक्रेटरी थी। सदा प्रसन्न रहनेवाली दीदी के ओठो पर मुस्कुराहट सदा खेलती रहती। वह कभी-कभी सितार बजाकर मीरा की पदावली गा लेती थी, टेढी-मेढी रेखाएँ खीचकर कलापूर्ण चित्र भी बना लेती थी। विधवा थी, ओढने-पहनने, खाने-पीने की चीजो मे सादगी के कड़े नियमो को मुस्तैदी से पालती थी, लेकिन अन्य अध्यापिकाएँ जो सधवा थी वे भी उनकी सादगी पर फिदा थी।

स्नान-भोजन करके, दीदी अन्य अध्यापिकाओ के साथ जब स्कूल मे दाखिल हुई तो बुधनी की माँ फुलिया को लेकर कमरो मे झाड़ू दे रही थी

और बड़बड़ा रही थी। भगेलू चुपचाप बेंचों को उठा-उठाकर अन्दर कर रहा था। दीदी को देखते ही बुधनी की माँ जोर-जोर से चिल्लाकर बोलने लगी "छी-छी! एक दिन में सुअर के खुहार बना देलन सब'''राम-राम''!"

दीदी ने कमरे में जाकर देखा—दीवाल पर स्थान-स्थान पर पान की पीक पड़ी हुई थी। नीचे फर्श पर सिगरेट के अधजले टुकड़े, सिगरेट के खाली डब्बे और माचिस की जली हुई तीलियाँ बिखरी हुई थी। दीदी ने किंचित नाक सिकोड़ते हुए कहा, "लो जल्दी साफ करो।" कहकर वह आफिस खोलने चली। वह आफिस खोल ही रही थी कि उसकी आँखें, दीवाल पर लिखे सुन्दर अक्षरों पर अटक गयीं—

"उठ सजनी खोल किवाड़ें, तेरे साजन आये दुआरे!"

दूसरी जगह—"खिड़कियाँ तुम्हारी बन्द रही पर मैंने तुमको देख लिया।"

लाल अक्षरों में—"रानी अब अध्यापन छोड़ो, मेरे दिल का राज सँभालो।"

नीले पेन्सिल से —"प्रेम की भाषा सजनि मुझको भी पढ़ा दो।"

पढ़ते-पढ़ते दीदी तिलमिला उठी। आफिस खोलकर धम्म-से कुर्सी पर जा बैठी। उसके ओठों पर कुछ घण्टे पहले जो स्वाभाविक मुस्कुराहट लौट आयी, वह विलीन हो गयी। वह उठी, फिर बैठ गयी। एक कागज पर लिखने लगी—'चेयरमैन की सेवा में' फिर न जाने क्या सोचकर कागज को फाड़कर वह उठ खड़ी हुई।

"फ्लोरा!" दीदी ने पुकारा।

फ्लोरा और उर्दू अध्यापिका सलमा आयी, दीदी की गम्भीर मुद्रा को देखकर अवाक् खड़ी रही।

"क्या है दीदी?" फ्लोरा ने मौन भंग करते हुए पूछा।

दीदी ने, बाहर आकर दोनों को दीवाल की ओर दिखलाया। दोनों ने पढ़कर घृणा से मुँह विकृत कर लिया। सलमा बोली, "यह बारातियों का काम है!"

"हूँ," दीदी ने कहा, "सभ्य बारातियों ने लिखा है।"

लड़कियाँ दल बाँधकर मुस्कुराते हुए आ रही थी। सरजू भी स्कूल की गाड़ी पर लडकियो को लेकर आ गया था।

"प्रणाम दीदीजी, दीदीजी प्रणाम, प्रणाम···" कहकर, मुस्कुराती हुई लडकियों की टोली ज्यो ही स्कूल की सीढी पर पाँव रखने लगती, दीदी की गम्भीर वाणी सुनकर सब एक साथ रुक पड़ती।

"तब तक बाहर मैदान मे खड़ी रहो।"

दीदी तथा अध्यापिकाओ के चेहरो को देखकर लड़कियाँ आपस मे कानाफूसी करने लगती—"देखो-देखो ! दीदी की आँखें लाल है !"

"ऐसा तो कभी नही···"

"समझी, समझी···" मंजू खुश होकर कहती, "कोई बड़े आदमी मर गये है, फिर वही पाँच मिनट चुप···"

"फ्लोरा ! रौलकॉल करके छुट्टी दे दो।" कहती हुई दीदी पुनः आफिस मे जा बैठी।

छुट्टी दे दी गयी। छात्राओ ने बुधनी की माँ से पूछा, मदालसा से दरयाफ्त किया, पर कुछ भी पता नही चला।

दीदी अपने कमरे मे लौट आयी और बिछौने पर लेट गयी। उसके अन्दर एक आग-सी जल रही थी, सिर फटा जा रहा था। और रह-रहकर प्यास लग रही थी।

शनिवार को शहर के प्रतिष्ठित रईस श्री आनन्दीप्रसादजी के यहाँ बारात आयी थी। उनकी एकमात्र पुत्री 'इन्दु' के शुभविवाहोपलक्ष मे स्थानीय धर्मशाला मे बारातियो के ठहरने का प्रबन्ध किया गया था। किन्तु सभ्य-असभ्य, साधारण-असाधारण और धनी-गरीब के वर्गीकरण की ओर प्रबन्धकों का ध्यान ही नही गया था। सभ्य और सुसंस्कृत बारातियो ने जब 'जेनरल बारातियों' के साथ रहना अस्वीकार कर दिया तो चेयरमैन साहब से अनुमति लेकर 'गर्ल्सस्कूल' मे ही ठहरने का प्रबन्ध कर दिया गया था—सभ्य, शिक्षित और सुसंस्कृत बारातियों के लिए। स्कूल के कम्पाउण्ड मे ही अध्यापिकाओ के 'क्वार्टरस' थे। रविवार की शाम को अन्य अध्यापिकाएँ विवाह-गृह के समारोह मे सम्मिलित होने चली गयी थी, स्कूल की ओर

खुलनेवाली खिडकी को बन्द करके दीदी अपने कमरे में बैठी अधूरे चित्र को पूरा कर रही थी। खिडकी के उस पार—स्कूल में सभ्य बारातियो का भोजन-पान शेष हो चुका था। पत्तलों पर कुत्तो की लडाई, भिखारी और भिखारिनो की करुण पुकार को सुनकर दीदी का ध्यान भंग हुआ। चित्र को अपूर्ण ही छोड़कर—वह न जाने क्या सोचने लगी थी। धीरे-धीरे कुत्तो का भूँकना बन्द हुआ तो भिखमगो ने आपस में लड़ाई शुरू कर दी थी। लड़ाई जब शान्त हुई तो एक छोटे शिशु के रोने की आवाज सुनायी पड़ी थी। दीदी ने पहचान लिया था, अभागिन मृणाल के बच्चे के कोमल कण्ठ-स्वर को। 'ओ बाबा एत झाल ताई तो बोलि छिले आमार काँदछे केन?" मृणाल खाते-खाते बोल उठी थी। 'मृणाल के छोटे-से शिशु ने जूठन का स्वाद लेना शुरू कर दिया।' दीदी कुछ आश्चर्यित हुई थी। दीदी मृणाल को जानती थी, उसे प्यार करती थी, कभी-कभी बुलाकर भरपेट भोजन कराती थी और उसके प्यारे बच्चे को गोद में लेकर पुचकारती भी थी। बंगाल के भुक्कड़ों की जमात में मृणाल जब इस शहर में आयी थी तब उसकी गोदी अथवा देह में यह शिशु नहीं था। रोज शाम को कुछ बासी रोटियाँ पाकर बदले में मृणाल ने दिया था, इस शहर को वही भोला-भाला शिशु जो कड़वी तरकारी खाकर रो उठा था। मृणाल बंगाल के एक ग्राम के खुशहाल किसान की पुत्री थी। तो, उस शाम को बैठी-बैठी दीदी बहुत-सी बातें सोच रही थी—कुत्ते, मनुष्य, मृणाल और उसके प्यारे बच्चे के सम्बन्ध में न जाने क्या-क्या सोचते-सोचते आरामकुर्सी पर थकी-सी लेट गयी थी। स्कूल के बरामदे पर किसी ने, किसी सरोज नामक व्यक्ति को पुकारकर कहा था—"सरोजजी! ओ! सरोजजी, जरा इधर आइए।"

"क्या है?" सरोज अथवा किसी दूसरे ने पूछा था।

"देखिए। यहाँ की भिखारिनो की आँखों में भी एक अजीब जादू है।" पुकारनेवाले व्यक्ति ने दिखलाया था। दीदी की भौंहें ज़रा तन गयी थी और कान सतर्क हो गये थे। देखनेवाले व्यक्ति ने देखकर कहा था, "ओहो!··· 'जादू' मत कहिए, 'मद' कहिए 'मद'।"

"अरे आप कवि ठहरे।" प्रथम व्यक्ति ने संशोधन को स्वीकार कर लिया था। एक तीसरी आवाज सुनायी पड़ी थी, "अच्छा कविजी! कल्पना

कीजिए तो, जहाँ की सड़कों पर ऐसी 'परियाँ' मारी फिरती हैं, खिड़कियाँ बन्द कर बैठनेवाली मलकाएँ कैसी होंगी ?"

इस पर जोरो से कहकहे लगे थे और वह प्रसग, कहकहे के साथ, खिड़की की लकड़ियों को छेदकर 'दीदी' के अन्तःस्तल मे घुस गया था।

उसी रात को तीन बजे तक स्कूल के बरामदे पर 'अगूरीबाई' नाचती रही थी। घुँघरू की छमछमाहट, दर्द-भरी आवाज और 'वाह ! वाह ! क्या खूब !!' को सुनते-सुनते 'दीदी' तकिये मे मुँह छिपाकर रोयी भी थी। दूसरे दिन भी वह यो ही बिछौने पर निश्चेष्ट पड़ी रही थी। बिछौने पर से उठते ही उसका सिर चक्कर खाने लगता था। एक ही रात मे न जाने कितनी दुर्बलता आ गयी थी। रविवार की शाम को ही अगूरीबाई कूक पड़ी थी—'अँधेरिया है रात सजन···।'

'वाह ! नेकी और पूछ-पूछ···' साजनों में से एक ने फरमाया था, शेष साजनो ने जबर्दस्त कहकहे लगाये थे।

'चुन-चुन कलियाँ सेज बिछायी···'

'—मजेदार ···'

कहकहो के ववण्डर में 'दीदी' ज्ञानशून्य हो गयी थी, अगूरीबाई गाती ही रही थी।···सोमवार को रौलकॉल के बाद छुट्टी देकर जब वह लौटी थी तो उसके अन्दर आग-सी लग रही थी, सिर फटा जा रहा था और उसे रह-रहकर प्यास लगती थी।

एक ही दिन मे बुखार ने भीषण रूप धारण कर लिया। लेडी डॉक्टर आयी, नुस्खा देकर चली गयी और दवा होने लगी। मंगलवार को सुबह से ही 'प्रलाप' के लक्षण दिखायी पड़ने लगे। वह बिछौने पर अचल हो रही थी और वह रह-रहकर कुछ बड़बडाती भी थी। कभी-कभी चौंककर पास मे बैठी मदालसा को उठकर पकड लेती थी और रो पड़ती थी—"मदा ! छिप जाओ बिट्टी मेरी···वह बीडीवाला···बीड़ीवाला !!"···कहते-कहते वह बेहोश होकर बिछौने पर लुढक पड़ती थी।

हाँ, एक बीड़ीवाले को अक्सर 'मिस्ट्रेस क्वार्टरस' के पास आकर दिल में दर्द पैदा हो जाया करता था और वह इलाही से उस दर्द को न मिटाने के लिए आरजू करता हुआ चला जाता था।

दीदी आँखें खोलकर इधर-उधर देखती, "मदा, फ्लोरा, सलमा और बुधनी की माँ करुण नेत्रों से बैठी हुई है···नहीं वह खड़ी है, मृणाल; उसकी गोदी में नन्हा शिशु है ! वह धोतीवाला !!···उँह-हूँ हूँ !"

"दीदी !" सलमा पुकारती।

दीदी आँखें फाड़े दीवाल की ओर देखती ही रहती—"मजेदार···पीली अंगूरी और वह गूँगी पगली···गर्भवती पगली हँस रही है—हेंह-हेंह उँह हेंह उएँ··· !!"

"हेंह-हेंह उँह हेंह उएँ"—गूँगी-सी, दीदी भी हँस पड़ी।

"दीदी"—प्राय: रोती हुई फ्लोरा ने पुकारा। सलमा ने सिर पर आइसबैग रखा और मदालसा पंखा झलने लगी। दीदी आँखें बन्द किये सोचने लगती—वह पगली गर्भवती है। उस पर भी बलात्कार किये गये। छी: छी: ! वार, वाइन एण्ड वीमेन—सुरा, युद्ध और नारी···सत्यानाशिनी चीजें हैं।···'उठ सजनी खोल किवाड़े ?'···वह फिर चौंककर उठ बैठती, बड़बड़ा उठती—'खोल दो खिड़कियाँ···याँ-याँ···।' बुधनी की माँ पकड़कर उसे लिटा देती।

"खिड़कियाँ तो खुली ही हुई हैं।" सलमा कहती।

दीदी चुपचाप आँखें मूँदे रहती···'भरी सभा में द्रौपदी चीरहरण··· उसकी करुण पुकार, उसे नंगी देखने की वासना ··आँह !' आँखें मूँदे ही अपनी साड़ी के छोर को पकड़ लेती और चिल्ला उठती—"मैं नंगी हो जाऊँगी···मैं नंगी हो जाऊँगी-गी-गी !!"

"दीदी"—फ्लोरा, मदा और सलमा तीनों प्राय: एक ही साथ पुकार उठतीं। दीदी घृणा से मुँह विकृत कर लेती।

भगेलू लेडी डॉक्टर के यहाँ गया था, लौटकर आया तो चुपचाप खड़ा रहा। बहुत पूछने पर भगेलू ने कहा, "डॉक्टरनी साहेब राजा रघुबीरसिंह के हियाँ जाते थे। हम जाकर बोले तो बोलिन कि···" वह चुप हो रहा।

"क्या बोली ?" फ्लोरा ने डाँटकर पूछा।

"बोलिन कि जाकर अपना दीदी को दूसरा बिवाह कर दो, सब ठीक हो जायगा।"

इधर बिछौने पर पड़ी-पड़ी वह दीवाल की ओर एकटक से देख रही थी

—स्कूल कम्पाउण्ड में वह मृणाल, नंगी अंगूरी और गूंगी पगली खड़ी है। चहारदीवारी के चारों ओर शहर-भर के लोग—सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित और गरीब-अमीर, अपनी-अपनी भाषा में हल्ला मचा रहे हैं—

"तनि हमरो देखद आज सुरतिया पतली कमरिया…"

"तेरे दर पे खड़ा हूँ कबसे…"

"उठ सजनी खोल किवाड़े…"

"तिरछी नजरियावाली रे !…"

"रे पगलिया…"

"री बच्चेवाली छोरी…"

"घूंघट हटाके चाँद-सा मुखड़ा…"

लोगों की भीड़ क्रमशः उत्तेजित हो रही है। सब फाटक पर धक्का दे रहे हैं। अंगूरीबाई आँचल से अपने को ढँक लेती है। मृणाल रो पड़ती है, उसकी गोद का बच्चा छाती में मुँह छिपाकर सिमट गया है। पगली हँस रही है—हेह-ऐं-उँ अह-अह हे-हे…, फाटक टूटने को है। ओह ! दीदी चौंककर उठ बैठी। इस बार उसको देखकर मदा, फ्लोरा वगैरह घबड़ा गयीं! दीदी अचानक बिछौने पर से उठकर भागी।

"दीदी ! दीदी !! दीदी…अरी रोको, पकड़ो…" सब पीछे-पीछे दौड़ीं। वह 'हेह उँह ओय अह-अह' करके हँसती और भागती जा रही थी। फाटक के पास जाते-जाते दीवाल से टक्कर खाकर गिर पड़ी। जमीन पर रक्त की धारा बह चली।

दीदी, अस्पताल में अन्तिम घड़ियाँ गिन रही थी। 'एभरग्रीन रेस्ट्राँ' में चाय पीनेवाले नौजवानों को एक नया मसाला मिल गया। चाय की चुस्की लेते हुए एक नौजवान ने कहा, "अरुण ! तुमने कुछ सुना…उसकी हालत बड़ी नाजुक है यार !"

"आखिर ऐसा क्यों हुआ, कुछ पता चला ?"

"भई, आखिर वह भी अपने पहलू में दिल रखती थी, किसी ने छीन-कर बेमुरौवती से तोड़ डाला होगा, और क्या ?"

"सुना है कि बारात में उसके कोई पुराने प्रेमी आये थे।"

"तब ठीक है"—एक कहानी-लेखक, जो अब तक चुपचाप बैठे हुए थे, बोल उठे, "मैंने भी ऐसी ही कल्पना की थी।"

"हि-हि ऐह हे-हे ओय···" रेस्त्रां के सामने सड़क पर गूंगी पगली जो बहुत निकट भविष्य में ही माता बननेवाली थी, खड़ी-खड़ी हँस रही थी—'ऐह हेह हो··' हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जाने की मुद्रा बना रही थी।

"अरी भाग, हट शैतान!"

"हेह ऐं"···वह प्रत्येक डेग से धरती पर एक विशेष जोर डालती हँसती हुई चली गयी।

[साप्ताहिक विश्वमित्र 23 अप्रैल 1945]

वण्डरफुल स्टुडियो

फोटो तो अपने दर्जनो पोज मे उतारे हुए अलबम मे पडे हैं, फ्रेम में मढ़े हुए अपने तथा दोस्तो के कमरो मे लटक रहे हैं और एक जमाने मे, यानी दो-तीन साल पहले, उन तस्वीरो को देखकर मुझे पहचाना भी जा सकता था। लेकिन 'स्वास्थ्य-संशोधन' के बाद वजन मे परिवर्द्धन और चेहरे मे परिवर्तन होकर जो मेरी सूरत का नया संस्करण निकला, उसे पहचानने मे मै खुद कई बार भटक गया हूँ। कहाँ वह 95 पाउण्डवाला चेहरा और कहाँ यह 154 पाउण्ड की सूरत !

दोस्तो ने कई बार सलाह दी कि एक नया फोटो उतरवाकर पिछली सभी तस्वीरों के 'केन्सिल' होने की घोषणा कर दूं, और अपने मन मे भी कई बार सोचकर देखा कि यह 'गुलगुली' न जाने कब गायब हो जाय ! चुनाचे एक नया फोटो खिचवाने का फैसला कर लिया गया। वरना, मैं तो अपने को ऐसा परिपक्व पॉलिटिसियन समझे बैठा था जिसकी तस्वीर के लिए सैकड़ो नही, तो कम-से-कम दस कैमरेवाले नौजवान जरूर चक्कर काटते हैं। असल मे अपना फोटो उतरवाना 'बचकाना' शौक-सा मालूम होता था।

फोटो उतरवाने की बात तो तय हो गयी, लेकिन उस शाम को यह फैसला नही हो सका कि फोटो कहाँ उतरवाया जाय। हमारे एक मुँहबोले भाईजान हैं, जिन्हें हम इनसायक्लोपेडिया की तरह काम मे लाते हैं ! असली

जाफरान किस दूकान में मिलती है, मुर्ग-मुसल्लम किस होटल पर बेहतरीन होता है, कॉफी किस 'काफे' की सही जायकेवाली होती है, असली गबरडीन कपड़ा किस दूकान में है, बड़े सर्जन और फिजिशियन कौन-कौन हैं और किस 'टेलरिंग' की क्या विशेषता है, वगैरह बातों के अलावा पारिवारिक उलझनों को सुलझाने में उससे बराबर मदद मिलती है।

भाईजान ने कहा, "एक जमाना था जब राजू चौधरी अच्छी तस्वीरें बनाया करता था। गवर्मेण्ट हाउस से लेकर 'शहादत-आश्रम' तक उसकी पूछ थी। अव्वल दर्जे के फोटोग्राफर के साथ ही वह पक्का मेहनती भी था। उस बार श्मशान-घाट में पूरे तीन घण्टे तक मेहनत करके डॉ. अग्रवाल की लाश की ऐसी तस्वीर उसने ली कि जिसे देखकर हर आदमी की ख्वाहिश ··"

मनमोहनजी की आदत है कि हमेशा भाईजान की बात को बीच में ही काट देते हैं। बोले, "किस मुर्दे की बात कर रहे हैं, आप? आजकल चतुर्वेदी-स्टुडियो है जिसके बारे में दो राये नहीं हो सकती?"

भाईजान ऐसे मौके पर कभी झुंझलाते नहीं हैं। उन्होंने फिर शुरू किया, "इसके बाद घोषाल अपने नये कैमरों के साथ मैदान में उतरा। उसके बारे में यह मशहूर है कि बगैर 'रिटच' किये ही बेहतरीन तस्वीरें बनाया करता था। फिर 'आलोछाया' वालों का युग आया, जो 'लाइट और शेड' की कला में निपुण था। प्रोफेसर किरण की एक ऐसी तस्वीर उसने उतारी थी, जिसे इण्टरनेशनल फोटोग्राफी प्रदर्शनी में प्रदर्शित करने की चर्चा जोरों पर चल पड़ी थी। सिर्फ नाक पर लाइट दिया गया था। जरा कल्पना कीजिए, काले कार्ड पर सिर्फ नाक और चश्मे के फ्रेम के एक कोने पर हल्की रोशनी डाली गयी है और आप उस काले कार्ड पर प्रोफेसर किरण की सूरत को स्पष्ट देख रहे हैं। अब तो चतुर्वेदी का मार्केट है, मगर·· "

"मगर क्या?" रमाकिशुनजी ने पूछा।

"मतलब यह कि चतुर्वेदी के यहाँ जानेवालों को अपने पाकिट पर पूरा भरोसा होना चाहिए।" भाईजान ने फरमाया।

बीरेन को न जाने क्यों यह बात लग गयी। वह बोला, "भाईजी! आपका यह इल्जाम सरासर गलत और गैरवाजिब है। बेचारा पैसा लेता है

तो काम भी करता है। फिल्मों और प्लेटों की बढती हुई कीमतों का भी पता है आपको ?"

मजलिस को बहस के लिए काफी मसाला मिल गया था और मुझे याद आयी कि 'चाय' के पैकेट के खत्म होने की सूचना मुझे सुबह ही दे दी गयी थी। सरकारी ट्रेजरी से चेक का रुपया निकास करना आसान है, लेकिन 'चूल्हे-चौके' की सरकार से पैसे मजूर करवाकर निकलवाना कितना कठिन है, यह लिखने की बात नही। पैसे निकलते है जरूर, मगर हड्डी में घुस जानेवाले रिमार्कों के साथ।

"हजार बार कहा कि अपने लिए 'हैपी वैली' लाते हो तो उसके साथ ही ब्रुकबाण्ड के 'होटलब्लेण्ड' वाले डस्ट का भी एक पैकेट ले आया करो। लेकिन इन पर तो 'चाय का शौकीन' कहाने का भूत सवार है। दोस्तों ने कह दिया—यार, चाय के असल शौकीन तो तुम्ही हो— बस, बन गये उल्लू। पूरे छ रुपये बारह आने पाउण्डवाली चाय पिलाये जा रहे हैं। दुनिया मे आग लगी हुई है और यहाँ 'व्हाइट प्रिन्स' पीने के मन्सूबे बाँधे जा रहे हैं · "—यही मेरी सरकार की, सलाह कहें या फटकार कहें, नसीहत है।

'व्हाइट प्रिन्स' नही, व्हाइट जेसमिन ! एक दिन हमारी मजलिस मे इस बात की चर्चा हो रही थी कि हिन्दुस्तान की कौन-सी सख्शियत कौन-सी चाय और सिगरेट पीती है। मौलाना आजाद के बारे मे कहा गया कि वे व्हाइट जेसमिन चाय पीते है। मौलाना ने अपनी किताब 'गोबारे खातिर' मे कबूल की है। और इसी सिलसिले मे हममे से किसी की सरस और चंचल रसना से यह पुरहौसला उद्‌गार जरा जोर से निकल पडा था—'जिन्दगी कायम रही तो हम भी कभी चख लेंगे भाई !' पर्दे के उस पार यही बात पहुँच गयी थी और उसी दिन से मुझ पर व्हाइट प्रिन्स का व्यग्यबाण छोड़ा जा रहा था। यहाँ तक कि ससुराल से यह बात यों 'रिडायरेक्ट' होकर पहुँची थी—'व्हाइट एलिफेण्ट साहब व्हाइट प्रिन्स पीने के मन्सूबे बाँध रहे हैं।'

चुन्नीलाल को चाय और सिगरेट के लिए बाजार दौडाकर जब मैं वापस आया तब बात एकोनामिक्स के डिप्रेसन के दायरे को पार कर पालिटिक्स के सोशलिज्म, कम्युनिज्म और प्रजा-सोशलिज्म के भँवर मे चक्कर

काट रही थी। रोज यही होता है। बात कोई भी हो और कहीं से प्रारम्भ किया जाय, उपसंहार यही होता है।

इसलिए उस शाम की मजलिस में यह तय नहीं हो पाया कि फोटो कहाँ उतरवाया जाय।

दूसरे दिन शाम को जब मैं चौक से गुजर रहा था, 'वण्डरफुल स्टुडियो' के वण्डरफुल साइनबोर्ड की जलने-बुझनेवाली रोशनी ने फोटो की याद दिला दी। यह भी याद आयी कि राजन यही काम करता है। राजन, हमारा कलाकार मित्र जो शान्तिनिकेतन से फाइन आर्टस् का डिप्लोमा प्राप्त कर साल-भर तक यहाँ फांके करता रहा। अब इसी स्टुडियो में उसे नौकरी मिल गयी है। आखिर 'वण्डरफुल' में ही फोटो उतरवाने का इरादा मैंने पक्का कर लिया।

दूकान में दाखिल होते ही एक खास ढंग के आदमी से सामना हुआ—"फर्माइये जी। मैं ही वण्डरफुल का डिरेक्टर हूँ।"

"फोटो लेना है।"

"बेहतर जी। चलिए, अन्दर सटुडियो में।"

सामने मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था—'यह दुनिया एक वण्डरफुल स्टुडियो है।'

"राजनजी कहाँ हैं?" मैंने पूछा।

"कौन राजन! म्हारा आरटिस्ट! बो तो आज विम-वाइफ रेडियो सटेशन गया हुआ है। कमरसल आरट पर आज उनका टाक है।" वह आदमी लुढ़कता हुआ आगे-आगे चल रहा था।

अन्दर के एक कमरे में पहुँचकर वह हमारी ओर मुड़ा—"अच्छा जी म्हाई सा'ब, पोज आपका अपना होगा या हमारे सेट्स के मुताबिक?"

"क्या मतलब?"

"मतलब समझा देता हूँ"—उसने अपने गले से लटकते हुए मैगनिफाइंग ग्लास की रेशमी डोरी को उँगलियों में लपेटते हुए कहा, "सा'ब, बात यह है कि हमने अपने कस्टमरों की इच्छा के मुताबिक, बड़े-बड़े आरटिस्टों को एम्प्लाय करके तरह-तरह के सेट्स बनवाये हैं।...इधर आइए। (पर्दा हटाकर) यह है हमारा फिल्मी सेट, और ये रही तस्वीरें इस सेट की!"

उसने एक बड़ा एलबम खोला।

तस्वीरों मे देखा, फिल्म की मशहूर अभिनेत्रियों के अभिनय के दृश्य थे। बात कुछ समझ मे नही आयी। बोला, "ये तो फिल्मी तस्वीरे है ?"

"जी सा'ब, देखने से तो यही मालूम होती है"—अपनी काया के अनुपात से एक भारी-भरकम हँसी-हँसते हुए उसने कहा, "यही तो म्हारी खसूसियत है। जरा गौर से देखना जी—हमने अपने कस्टमरों की ख्वाहिश के मुताबिक उन्हे सुरैया, नरगिस, ललिनी, निम्मी वगैरह के साथ एक्टग के पोज में खड़ा कर फोटो लिया है !"

अब सभी तस्वीरें मेरी निगाह मे एक साथ नाच गयीं। राजकपूर, दिलीपकुमार तथा देवानन्द की तरह बालो को सँवारे हुए नौजवान (और किशोर भी) अभिनय की मुद्रा बनाये हुए है। कोई सुरैया की ठुड्डी पकड़कर कुछ कह रहा है। कोई घुटनो तक नेकर और नेवी गंजी पहने हुए, नरगिस के हाथ-मे-हाथ डाले, 'आवारा' के एक पोज मे है और कोई निम्मी के कन्धे पर हाथ डाले दिलीपकुमार के अन्दाज मे कुछ कहना चाहता है !

'यह सब ? ये अभिनेत्रियाँ ?' मैं सिलसिले से कुछ पूछ भी न सका।

—"ये एक्टरेसस ! हूँजी, वो 'डमी' हैं। हमने बडे-बड़े फनकारो को अपने यहाँ एम्पलाय किया है, वो हमें हर नये पोज के लिए मिट्टी की मूर्तियाँ घड देता है।"

"क्या लडकियाँ भी इस तरह के पोज मे तस्वीरे उतरवाती हैं ?" मैंने जरा साहस से काम लिया।

"जी भोत ! उनके लिए हमने एक्टरों की 'डम्मियें' बनवा रक्खी हैं। ज्यादेतर लड़कियाँ अशोककुमार, दिलीप और राजकपूर के साथ 'अपियर' होना चाहती है। वैसे तो उस दिन एक कालिजगर्ल ने कामेडियन मिर्जा मुशर्रफ के साथ उतरवाने की ख्वाहिश जाहिर की, मगर एक कस्टमर के लिए कौन डम्मी बनाता है ? पिछले महीने पचीस कस्टमरो के आर्डर पर हमने एक 'शेर' की 'डमी' बनवायी, लोग 'सेमसन' की तरह शेर से लड़ते हुए तस्वीर उतरवाना चाहते हैं।"

"लेकिन फोटो मे तो ये डम्मी जानदार मालूम होते हैं।" मैंने अपनी मुस्कुराहट को होंठो में ही रोकते हुए कहा।

"जी मात्र !" वो हमारे लाइट शेड, मेकअप और रिटेच से ठीक हो जाते हैं।

लड़के ने आकर कहा, "सा'ब ! फिलम सेट का कस्टमर आया हुआ है।"

'ले आओ"—फिर मुझसे बोला, "चलिए, हम आपको अपना दूसरा सेट दिखावें। आपको मेरा पालिटिकल सेट जरूर पसन्द होगा।"

हॉल के दूसरे पार्टिशन में हम गये। बड़े उत्साह से वण्डरफुल डिरेक्टर साहब ने मुझे अलबम दिखाना शुरू किया—"देखो जी भाई सा'ब ! ये हैं आइना पोजेज !"

एक तस्वीर में देखा, मिलिटरी पोशाक में कुछ लड़कियाँ कवायद कर रही हैं।

"आइना पोज क्या ?"

'आप आइना नहीं समझे ? अरे ! आइना ? इण्डियन नेशनल आर्मी ! ढिल्लन, सहगल, शाहनवाज और काप्टन लक्ष्मी···?"

ओ ! आइ. एन. ए. ?"

"उस समय तो सा'ब, सब लड़कियों को बस यही शौक था, लिहाजा हमने मिलेटरी वर्दियाँ और 'टम्मी' रायफल बनवाये ?"

मैं एक तस्वीर को गौर से देखने लगा—एक दुबली-पतली, लम्बी लड़की, जिसके गालों में गड्ढे थे, आँखें छोटी और अन्दर धुसी हुई, ठीक कैप्टेन लक्ष्मी के पोज में सेल्यूट ··नहीं···जय हिन्द कह रही है। उसके दुबले हाथ में रायफल का कुन्दा हाथी के पाँव-जैसा मालूम हो रहा है।

"और इधर देखिए ! हजारों का मजमा है। नेताजी भाषण दे रहे हैं। सामने 'माइक' है।"

फोटो में भीड़ को देखकर कांग्रेस के महाधिवेशनों की याद आ रही थी। मैंने ताज्जुब से कहा, "हजारों का मजमा नहीं, लाखों का कहिए। लेकिन ·· इतने लोगों को, यानी इतनी 'डम्मियाँ' आपने कैसे बनवायीं ?"

वह हँस पड़ा, शायद मेरी बेवकूफी पर। फिर बोला, "सा'ब, ये फोटोग्राफिक टिरीक हैं। हमने इस तरह के पर्दे बनवा लिये हैं।"

'देखो जी ! ये मजदूरों का लीडर है। हजारों मजदूरों के जलूस की

रहनुमाई कर रहा है।"

देखा—हजारो मजदूरो की लम्बी कतार के आगे हाथ मे झण्डा (सही रंग नही कह सकता, क्योकि फोटो में काला ही था, और झण्डे के निशान के बारे में जानकर क्या कीजिएगा ?) लिये हुए, बाल बिखराये हुए, मुंह फाडे हुए, मजदूरो के लीडर कदम आगे बढ़ा रहे हैं। वाह !

"इस पोज मे राजनैतिक कार्यकर्ता या लीडर क्यो अपनी तस्वीर उतरवायेंगे ? इसे तो बैठे-ठाले लोग ही पसन्द करते होंगे। फोटो देखकर भी तो यही जाहिर होता है ?" मैंने कहा।

"आप ठीक कहते है सा'ब। ज्यादेतर ऐसे-वैसे लोग ही—खासकर व्योपारी, सेठ-साहूकारो के लडके इसे पसन्द करते है ? हमने कुछ जवाहर जैकेट, कुछ सुफेद और रंगीन टोपियाँ बनवा ली है। लेकिन अभी उस दिन ···माफ करना जी·· प्राइवट बात है···आप किसी से बोलना मत। अभी उस रात को मनिस्टर कृपा बाबू का प्राइवट सिकरटरी चौबे आके हाजिर। बोला —देखो जी पापडा, पुरानी दोस्ती है तुमसे, भोत प्राइवट बात है। मनिस्टर सा'ब रायपुर मे ब्रच्छ-रोपण मे गये थे। वेदर अच्छा नही था, तस्वीर साफ नही आयी। कोई उपाय करो। कल ही अखबारो मे देना है। मैं बोला—मगर मनिस्टर सा'ब को सटुडियो मे आना होगा जी ! ग्यारह बजे रात को मनिस्टर सा'ब आये। हमने झण्डोत्तोलनवाला पर्दा लगा दिया, हमारे आरटिस्ट ने झण्डे की जगह ब्लॉक कर दिया, वहीं मनिस्टर सा'ब ने ब्रच्छ-रोपण किया। झण्डोत्तोलन के बदले ब्रच्छ-रोपण ही सही।"

उसने तस्वीर देखने को दी। अरे ! यह तस्वीर तो हाल ही पत्रों मे छपी है। मुझे तो इसके ऊपर की सुर्खी और नीचे का चित्र-परिचय भी याद है !

बगल के पार्टिशन से (फिल्म सेट से) आवाज आ रही थी—'कमर को और झुकाइए···जरा···हाँ···और उँगलियो को बिखराइए फूलों की पंखुड़ियों की तरह ··इस तरह···हाँ···'

वण्डरफुल साहब मुस्कुराकर बोले, "वो डानस का पोज ठीक हो रहा है। नरत्य-निकेतन है न वहाँ···मोड़ पर, उसी का डिरेक्टर हमारा डानस पोज बनाता है।"

"वाह साहब ! वास्तव में वण्डरफुल है आपका स्टुडियो ! युनिक है।" मैंने कहा।

'सा'ब, हम इसे और डेवलप करेंगे। इधर हमने फिर दो सेट बनवाये हैं। कौमी सेट ' और' 'फरेंच सेट !"

"कौमी सेट? ज़रा वह भी दिखाइए।"

इस बार वण्डरफुल साहब कुछ हिचकिचाये। फिर बोले, "देखिए जी बाबू सा'ब। आप जब राजन के मित्तर हैं तो हमारे भी मित्तर ही ठहरे; वरना, हम औरों को नहीं दिखाते। आइए।"

तीसरे पार्टिशन में ले जाकर वण्डरफुल ने मुझे दो-तीन तस्वीरें दिखायीं। एक में एक नौजवान को एक लुंगीधारी बूढ़े के पेट में छूरा घुसेड़ते देखा। दूसरे में एक बहादुर युवक शिवाजी की तरह घोड़े को उछालता और तलवार चलाता हुआ दिखायी पड़ा। तीसरे में भारत-माता आसमान से पुष्प-वृष्टि कर रही है और एक वीर राष्ट्रीय झण्डे को फाड़कर चिथी-चिथी कर रहा है···हजारों की भीड़ है।···

"और इधर फरेंच सेट है···हालीउड फिलम सेट !"

मेरा सिर चकरा रहा था। मैं पास की पड़ी हुई तिपाई पर बैठते हुए बोला, "वण्डरफुल सा'ब ! आपको किन शब्दों में धन्यवाद दूँ। आपने कितना बड़ा कल्याण किया है समाज का— यह कहने की बात नहीं। आपने यदि यह स्टुडियो नहीं खोला होता तो दुनिया के लोग पागल हो गये होते। ···आप इन्सान के मन में सोयी हुई अतृप्त इच्छाओं की तस्वीर लेते हैं। यह तो बेजोड़ है। सही तस्वीर तो आप ही लेते हैं इन्सान की। वाह !"

वण्डरफुल अब बकने लगा, "बाबूजी ! यहाँ बिजनेस का तो कोई मजा ही नहीं। लाहौर में जब हम थे तो ऐसे एक-एक पोज के लिए एक-एक सौ रुपये लोग देते थे। यहाँ तो लोग 'आरट' को समझते ही नहीं।···अच्छा जी ! अब फर्माइए, आपके लिए कौन-सा सेट लगवाऊँ !"

"मेरे लिए ?···मेरे लिए सेट लगवाने की जरूरत नहीं। मैं अपने मन का पोज देना चाहता हूँ।" मैंने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"बेहतर जी ! फर्माइए।"

"मेरे गले में रस्सी का फन्दा डालकर एक पेड़ से लटका दो। फोटो

ऐसा उत्तरे, जिसमे मेरी आँखें और जीभ बाहर निकली हुई हों और हाथ मे एक कागज का टुकड़ा हो जिस पर लिखा हो—'खुश रहो वण्डरफुल वतन हम तो सफर करते हैं।' "

[अवन्तिका / जुलाई 1953]

अपनी कथा

आप अपनी कथा के पात्र का नाम राम-श्याम-यदु रखिए या हैरी-डिक-टॉम; बुझक्कड़ लोग उसको आपकी ही कहानी बूझेंगे। आपको ही आपकी कथा का पात्र मानेंगे। और जिस दिन आप सचमुच में अपनी कथा, अर्थात् आत्म-कथा सुनाने बैठेंगे, बुझक्कड़ों की मण्डली त्राहि-त्राहि पुकार उठेगी'' अहं की भी सीमा होती है। अपने को पण्डित नेहरू समझने लगा है.'''मानसिक चिकित्सागार में भेजो इसको!

पता नहीं, आप कैसी स्थिति में कथा कीजिएगा। किन्तु, मैंने जब अपनी कथा शुरू कर दी है तो, अन्त तक सुनाकर ही उठूंगा। मानसिक चिकित्सागार में भेजकर मेरी कहानी को बन्द कैसे कर सकता है, कोई? मेरा अनुमान है अपनी कथा सुनानेवाला वहाँ भी अपनी कथा सुनाता होगा। वहाँ भी सुननेवाले होंगे, रसिक-मरम-सहृदय श्रोता, पाठक!

कथा-शास्त्रियों का कथन है, हरेक कथा में एक जीवन-दर्शन होना आवश्यक है। हर कथाकार का जीवन-दर्शन होना चाहिए, कोई।

अपनी कथा का जीवन-दर्शन, सोदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।'''

अपनी गली की गूँगी-बूढ़ी को मैंने अपनी इस कथा की पात्री के रूप में पेश किया है। तो मैं ही वह गूँगी हूँ। उस बूढ़ी को सबसे अधिक सताने-वाला, गली का सर्वोत्तम-शैतान छोकरा सनका भी मैं हूँ। शाहमेरग के आस-पास, गूँगी-बूढ़ी को चिढ़ाने-सताने में मशगूल सनका का प्यारा कुत्ता मोटर

के नीचे कुचलकर मर गया जो, वह मैं ही था। वह चीख मेरे ही कण्ठ से निकली थी। कथा के अन्त में, सतना रोया, मैं रोया। अपने सबसे बड़े दुश्मन के प्यारे कुत्ते की मौत पर बूढ़ी रोयी, मैं ही रोया। बूढ़ी ने सतना की पीठ पर बड़े प्यार से अपनी हथेली रखी, मैंने अपनी पीठ पर अपना हाथ रखा।···

मतलब यह कि हर कथा को लेखक की आत्मकथा होनी चाहिए। वरना, कथा असफल है।···मेरे सामने समस्या है, अपनी कथा से अपने को कैसे बहिष्कृत करूँ? कैसे निकाल दूँ 'मैं' को? क्यों निकाल दूँ? असफल कथाकार कौन कहलाना चाहेगा, भला!

(1943-44, भागलपुर सेण्ट्रल जेल; सेग्रिगेसन वार्ड)

गर्मियों की रात में, कुछ दिनों के लिए, हमें बाहर में सोने की इजाजत मिली थी। हर रोज, लॉक-अप (तालाबन्दी) के पहले ही, उच्च श्रेणी के नजरबन्दों के वार्ड के सामने बाबुओं की खाट-खटाली लग जाती। मशहरियाँ तन जाती। (···वे नवाबी के दिन!)

रात को, भोजनोपरान्त हम बेल-तले बैठते थे। इसी बैठने-बिठाने के सिलसिले में, सप्ताह में एक दिन 'गब्बे हाउस' का कार्यक्रम भी हो जाता था। 'गब्बे-हाउस' के तत्कालीन संचालक, वर्त्तमान काल में बिहार सरकार के मन्त्रियों में से एक हैं। सदस्यों में कई, अपने सचालक की तरह स्थूल-काय होने के अलावा मोटे-तगड़े कई ग्रन्थों के प्रणेता थे। उपनामधारी असाहित्यिक व्यक्तियों की संख्या अधिक थी। मेरे-जैसा पिद्दी-सदस्य एक और था, जो आजकल 'डिल्ली' में रहता है।···

जो भी हो, वैसी अच्छी साहित्यिक-बैठकियों का आनन्द, बाहर कभी प्राप्त हुआ हो···याद नहीं? न जेल जाने के पहले, न बाद में। 'गब्बे हाउस' में लोग अपनी कथा सुनाते थे। अपनी कथा, आपबीती, आपदेखी, आपसुनी—भूत-प्रेत की, आदमी की, जानवर की। संचालक जिसको हुक्म दे दें, बगैर झिझक के शुरू कर देना ही सदस्यता-रक्षा की पहली शर्त थी। नहीं तो जाइए! शतरंज खेलिए या गीत गाइए! फिर, कथा चढ़ती कसौटी पर। खरी उतरने पर कथा कहनेवाला खुद-ब-खुद माननीय सदस्यता प्राप्त कर

लेता था।

"भूत की कहानी सुनानेवाले कई सदस्य बीच में 'आउट' कर दिये गये। प्रचलित मानी ट्रेडिशनल भूतकथा की कोई कड़ी पकड़ी गयी और 'आउट' घोषित हो गये। भूत का खैनी-तम्बाकू माँगना, पीछे-पीछे नाम लेकर पुकारना आदि बातें चालू कथा की श्रेणी में आ जाती थीं। और हमारे 'गप्पे हाउस' में चालू कथा नहीं चल सकती थी।

पहले ही कह चुका हूँ, उस 'गप्पे हाउस' का एक पिद्दी-सदस्य यह अपात्र भी था। मेरी पात्रता परखने के लिए या सचालकीय विधान के अनुसार एक दिन मुझे हुक्म हुआ—आज 'हाउस' तुम्हारा 'गप्पे' सुनेगा।

हुक्म तो नहीं लगा पेड़ से बेल गिरा! सचालक महोदय हुक्म देने के बाद घड़ी देख रहे थे!

अपात्र ने अपनी पात्रता प्रमाणित करने के लिए कथा शुरू कर दी! भूत से हाथ मिलाने की कथा!—बतौर शीर्षक के मुँह से पहले ही निकल गया। हाथी के दाँत की तरह?

सभी सदस्य उत्कर्ण हुए! भूत की कथा कहने में मात्र एक ही व्यक्ति माननीयता प्राप्त कर सके थे, अब तक। सचालक महोदय प्रेततत्त्व के परम पण्डित समझे जाते थे। बहुत-सारी अँगरेजी, बंगला, संस्कृत पुस्तकों का हवाला देकर भूत-कथाओं को 'आउट' कर देते थे!

सो, इस पिद्दी की हिम्मत पर कई सदस्यों ने अचरज भी प्रकट किया। कुछ लोगों ने व्यंग्यबाण भी छोड़े"'नर-भूत या मादा-भूत? मैंने सदस्यों को स्मरण करा दिया—अकारण व्यंग्य करनेवाले अथवा कथा में अन्यथा अटकाव टालनेवाला, सचालक के कथनानुसार 'हाउस' का गप्पू, 'डबल गप्पू' और 'डम्पास' कहलाता है।

अपात्र ने अपनी कथा की भूमिका में—हाउस में उपस्थित एक अर्ध-बधिर सदस्य को साक्षी-साथी के रूप में पेश किया। वे जमींदार थे, शिकार-विकार की बात उन्हीं के सिर मेल गया। उनकी मन्द-मन्द मुस्कराहट से मेरी कथा को बल प्राप्त हो रहा था।"'मान लीजिए, उनका नाम रायजी था।

हमारे मित्र रायजी जमींदार-पुत्र हैं, यह तो आप जानते ही हैं। इनके

पूर्वजों ने बाघ-भालू का शिकार किया होगा। किन्तु, रायजी वैसे खूंखार शिकारी नहीं।

रायजी अपने मित्रो को हर वर्ष चिड़ियों के शिकार का प्रलोभन देते और बात पक्की होकर पत्र लिखने की अवधि तक मौसम समाप्त हो जाता और चिड़ियाँ उड जाती— अपने देश ! हर बार वे लाल-सर और मुर्गाबियों से लेकर किसी-न-किसी अजनबी तथा 'अब अलभ्य' जाति की पंछी की चर्बीदार चर्चा करते, जिसके मारने पर बन्दूक जब्त हो जाती है, पाँच सौ रुपये दण्ड···।

उस बार, रायजी मिले, तो चिड़ियों के साथ-साथ भूत की चर्चा में दिलचस्पी दिखलायी। और कहा—'इस बार अगहन में मेरे 'कामत' पर आओ। बस्टर्ड का गोस्त चखाऊँ और भूत से करमर्दन करवा दूं।'

रायजी के ऐसे आमन्त्रणों को हमने कभी 'सिरियसली' नहीं ग्रहण किया। उस बार भी हम भूल-भुला चुके थे। एक दिन रायजी का पत्र मिला—मित्रों को सम्मिलित आमन्त्रण ! अमुक तिथि को, अमुक ट्रेन से, अमुक स्टेशन पर उतरो।···निमन्त्रण-पत्र में नये साल की किसी नयी चिड़िया का जिक्र था। नाम याद नहीं।

हमारे यहाँ हर छोटे-बड़े जमींदारों के कामत होते। घर से दूर, दूसरे इलाके में, बकाश्त जमीनों की दखली के लिए वे कचहरी बनाते थे। हल-बैल रखते, हलवाहे-चरवाहे बहाल करते थे। घर का एक सदस्य कामत का इन्चार्ज होता था। कामत पर घर की स्त्रियों को रखने का रिवाज नहीं था।

वर्षों से उडती हुई चिड़िया मानो खुद हमारे हाथ में आकर बैठ गयी। हमने प्रोग्राम बना लिया, चिट्ठी का जवाब दे दिया।

छोटा-सा गँवई स्टेशन ! जहाँ गाड़ी शायद अनिच्छापूर्वक रुक जाती है। रुकते-रुकते खुल जाती है। रायजी ने अपने पत्र में लिख दिया था, स्टेशन से गाँव ज्यादा दूर नहीं। पगडण्डी पकड़कर, अगहनी धान के खेतों के मेड़ों को पारकर मैदान में आओगे, तो गाँव के शिवाला का कलस, पेड़ की आड़ से निकलकर दिखलायी पड़ेगा।···सामान ढोने के लिए बैलगाड़ी मौजूद रहेगी, स्टेशन पर।

मे कमरे मे गये। और, रायजी का (नमकहराम!) कुत्ता सोया रहा चुपचाप!

भा-दोस्त दूसरे कमरे मे ताक-झाँक आये। हमारे सोने की व्यवस्था दूसरे कमरे में की गयी थी। जमीन पर पुआल की गद्दी पर गद्दा और गद्दे पर बगुले के पंख की तरह सफेद चदरी। 'रायजी, पूरे रायजी हैं। वाह रे रायजी!

दोस्त बगल के दूसरे कमरे मे लालटेन लेकर घुसे—'आनन्द-ही-आनन्द है दोस्तो। 'अण्डे हैं, स्टोव है दूध है, चीनी है। भूख लगी है, सर्दी ज्यादा है। ' अरे, रायजी पूरे रायजी है?'

भा-दोस्त का प्रफुल्ल-उत्फुल्ल मुखमण्डल देखने योग्य था!'''भाय-रे-भाय! जुट पड़ो! टूट पड़ो!!

हम सभी तुरत मूड मे आ गये। बहुत दिनों के बाद मौके से हाथ लगा है। क्यों न, सूद सहित वसूल कर लिया जाय?

मेरे मन मे खटकनेवाली शंका (कि इस गाँव मे अशोक का शासन कहाँ से आकर छा गया है?) दूर हो गयी, आप-ही-आप।

स्टोव की सनसनाहट क्रमशः तेज हुई। रायजी के लौटने के पहले अण्डा और चाय तैयार हो जाय तो खूब रहे। अपने ही घर मे अपने को महमान पायेंगे।

स्टेशन पर बैलगाड़ी नहीं देखकर, लौटती हुई गाड़ी मे ही लौटने का प्रथम प्रस्ताव करनेवाला मित्र अब खुशी से कोई गीत गुनगुना रहा था। हम सभी किसी-न-किसी तरह, उसकी गुनगुनाहट के ताल पर झूम रहे थे।' '

राय? नहीं, कोई और है।

दरवाजे पर एक सुदर्शन-युवक मुस्कराता हुआ खड़ा था। सफेद पतलून, चेक का कुर्ता पैरों मे केड्स-जूता। घुँघराले बाल! भा-दोस्त ने स्वागत-शब्द के लिए वैसी मसालेदार भाषा का क्यों प्रयोग किया, आज तक नहीं समझ सका हूँ। उन्होंने हाथ मे चाय का प्याला लेकर अजब अभिनय और अदा के साथ कहा —'तशरीफ़-उ-उ-फ़ फरमाइए जनाब!'

आगन्तुक युवक इस अप्रत्याशित व्यवहार से अप्रतिभ हुआ। धीमे स्वर मे बोला—"रायजी नहीं?"'''

क्रा-दोस्त नाराज होकर, मेरी ओर आग्नेय आँखो से देखते रहे। किन्तु मैंने उनको बात करने का मौका नही दिया। नम्रतापूर्वक कहा मैंने, "आइए।"···हमने समझा रायजी ही आये। हम भी उन्ही की प्रतीक्षा कर रहे है।

"और रायजी आप लोगो की सुबह से ही प्रतीक्षा कर रहे है।" सुदर्शन युवक आकर मेरे पास बैठ गया। उसकी मुस्कराहट खूबसूरत होती ही गयी। कुछ क्षण चुप रहकर बोला। बोलते समय थोड़ा हकलाया, "मैं रायजी का मित्र हूँ।"

"तो, लिया जाय !" क्रां-दोस्त ने अपनी गलती सुधारने के लिए चाय की प्याली युवक के सामने रखते हुए, फिर अण्डा बढाते हुए कहा, "खाया जाय !"

रागी मित्र की गुनगुनाहट बीच मे ही कट गयी थी। युवक ने कहा, "बहुत अच्छा गीत गा रहे थे।···मेरा दुर्भाग्य, मेरे आते ही बन्द हो गया।"

क्रा-दोस्त ने पुनः अपनी सर्दारी शुरू की। बोले, "जी हाँ। वो ज़रा फिल्मीस्तानी है।"

"ज़रा आप भी !" युवक के इस क्षिप्र और सक्षिप्त व्यग्य पर मैं ठठाकर हँस पडा।

क्रां-दोस्त की समझ मे बात नही आयी। और वे अपनी हँसी को समेट-कर कुछ टटोलने लगे, बोलने को। मैंने युवक से पूछा, "आप इसी गाँव में रहते हैं ?"

"जी हाँ।"

"क्या करते हैं ? पढते हैं कहाँ ?"

"नही। मैं यहाँ डॉक्टरी करता था ?"

तीन कप पर-हेड के हिसाब से चाय का पानी डाला गया था। रह-रहकर क्रा-दोस्त की गुड़गुड़ाहटदार चुस्की प्रतिध्वनित होती और बार-बार अजनबी युवक चौक-चौककर देखता ! क्रा-दोस्त के चेहरे पर चाय की गर्मी चमक रही थी। पूछा, "जनाब का नाम ?"

"पी. के. बनर्जी !"

"तो, आप बंगाली मोशाय हैं?" श्रा-दोस्त गोल-गोल बोली निकालने के लिए अपने ओठों को संकुचित कर गोल बनाये रहे! एक मिर्चखोर दोस्त ने अण्डे के मिर्च को चबाकर, सिसियाते हुए चाय में चुस्की ली और 'आ···ह' कर उठा! मैंने पूछा, "अब क्या करते हैं?"

"कुछ नहीं।" युवक ने अपना चाय का प्याला जमीन पर रखते हुए कहा, "क्या कर सकता हूँ?"

"डॉक्टरी क्यों छोड़ दी आपने? इलाका तो खूब अच्छा है!"

"हेमोपैथी करते होंगे।" श्रा-दोस्त अपनी मित्रमण्डली की ओर आँख मारकर हँसे। मैं चुपचाप उस युवक का सप्रतिभ चेहरा देख रहा था!

"नहीं। ऐलोपैथी। ···छोड़ नहीं दी। कर नहीं सकता। मैं कुछ नहीं कर सकता।"

ऐसे युवक के मुँह से ऐसी उखड़ी-उखड़ी बातें नहीं शोभा दे रही थीं। श्रा-दोस्त पर मन-ही-मन क्रोधित हुआ, मैं। मैंने कहा, "बनर्जी बाबू। आप रायजी के मित्र हैं। हमें भी मित्र ही मानिए।"

"जरूर ···जरूर! निश्चय निश्चय! मैं झूठ नहीं कहता, मैं सबकुछ करना चाहता! कर कुछ नहीं सकता, किन्तु।···कभी कुछ नहीं कर सका। क्या कर सका?"

बनर्जी के दिमाग पर सन्देह करने की इच्छा नहीं हुई। हालाँकि श्रा-दोस्त अपने सिर के इर्द-गिर्द अपने बायें हाथ की एक उँगली चक्रवत् घुमाकर मित्रों को दिखा रहा था ···ढीला है!

बनर्जी ने अपनी निगाह एक बार इधर-उधर घुमायी। फिर स्वयं ही बोलने लगा, "मैं दस वर्ष पहले इस गाँव में आया था। इसी दालान में बगल में मेरी डिस्पेन्सरी थी। मैं गरीबों से विजिट का पैसा नहीं लेता था। उस समय लोग इसी तरह अपने सिर के पास उँगली घुमा-घुमाकर मेरे सिर के पुर्जों को ढीले होने की बात करते थे। मैं कहता, मेरे सिर में पुर्जे हैं ही नहीं। ढीला क्या होगा? हा-हा-हा।"

युवक की खुली हँसी सुनकर श्रा-दोस्त कुछ आतंकित हो गये!

बनर्जी कहने लगा, "आठ साल तक मैंने यहाँ काम किया, कभी बीमार नहीं हुआ। उन दिनों, इस इलाके को काला-आजार का मजबूर

किला कहा जाता था। नौवें साल, मैं बीमार पडा। साल-भर बीमार रहा···।"

मैने बात काटते हुए कहा, "एक साल ? काला-आजार···?"

बनर्जी फिर हँसा, "नही। काला नही, गुलाबी-आजार !"

"लंग्स ?"

"नही भाई, उसको तो सुफेद-प्लेग कहते है डॉक्टरी-कोड-भाषा मे—व्हाइट-प्लेग·· गुलाबी-आजार !"

(गब्बे हाउस के अभिव्यंजनावादी सदस्य ने गब्बे हाउस की खामोशी को तोड़ते हुए बात पकडी—प्रेम-प्रेम तो नही ?

मैंने कहा—जी !)

गुलाबी-आजार का मतलब सुन-समझकर क्रा-दोस्त ने ठहाका लगाया, "वा-वा-वा-वा-क-ह। जनाब तो जरा-मरा नही; पूरे फिल्मीस्तानी है। हा-हा-हा ! 'उस···जालिया का नाम ?" बनर्जी दिल खोलकर हँसा। किन्तु, तुरत गम्भीर हो गया। मैं उसके चेहरे को गौर मे देख रहा था।

(सचालक महोदय ने टोका—और, वह कुत्ता ?

—वह लेटा ही रहा, पूर्ववत् !

—ओ !

गब्बे हाउस शान्त ! सदस्यो के चेहरे पर बारी-बारी से नजर दौड़ायी, मैंने !)

बनर्जी ने अब और भी सहज-सुर मे शुरू किया, "इस गाँव के एक प्रमुख और प्रतिष्ठित परिवार की कन्या थी वह। सो, हम साल-भर तक एक-दूसरे को देखते ही रहे। आँखो-ही-आँखो मे बातें होती रही···जिस दिन वह बोली·· पहली बोली उसकी भूल सकता हूँ भला ? बोली नही, बजी—मीठे सुर मे—तुम मेरे दूलहा हो न ?" मैंने कहा, 'हूँ। लेकिन···।' वह जिद्दी लड़की की तरह बोली, 'लेकिन-वेकिन कुछ नही। तुम मेरे 'वर' हो दुलहा हो।···हम चोरी-चोरी मिलते।' वह हर बार एक ही बात पूछती, पूछती ही रहती लगातार, 'हो न ? तुम मेरे वर हो, तुम दुलहा···!' साल-भर मे मेरे कितने रोगी मरे, कितने बचे—मुझे याद नही।·· एक दिन हम दोनों ने एक-दूसरे को बेचैन होकर पूछा, 'कैसे क्या हो ?' हमने तरह-तरह

के रास्ते सोचे। अन्त में, उसने हिम्मत के साथ कहा, 'कल! बस, कल!! मैं माँ से कहूँगी, डॉक्टर मेरा 'दुलहा' है। इसके बाद जो हो, कुछ होकर रहे। मैं तुमको बुलाऊँगी डरना नहीं आना। कहना—हाँ मैं दुलहा हूँ, कमली का, कमली मेरी दुलहिन है। मैं कहूँगी—हाँ! उसकी बहादुरी-भरे प्रस्ताव से मेरा साहस बढ़ा—आऊँगा!'"

"वाह दोस्त! मर्द की बात और हाथी का दाँत!" भाँ-दोस्त की टीका-टिपकारी बुरी नहीं लगी—बनर्जी को। उसने उत्साहित होकर कहा, "आप ठीक कहते हैं।"

मैं, बनर्जी के चेहरे पर आँखें गड़ाकर बैठा था,—पर चुपचाप। उसके ओंठ ज़रा काँपे। उसकी बोली ज़रा लड़खड़ायी। वह हकलाता हुआ बोला, "दूसरे दिन, शाम को उसका नौकर दौड़ता आया।—'कमली दीदी को न जाने क्या हो गया है। जल्दी चलिए, तहसीलदार साहब बुला रहे हैं।' समझ गया, कमली ने बम फेंक दिया है। इसके बाद, मेरा काम है। तुरत चल पड़ा। साथ में कुछ नहीं लिया। जानता था, दवा के बक्स की कोई ज़रूरत नहीं'''।"

"जी हाँ! गुलाबी-आज़ार में बक्स और शीशी की दवा क्या काम करेगी?"

हम हँसे। किन्तु, बनर्जी अब एक पुतले की तरह, निर्विकार मुद्रा में कहता गया—लेकिन, वहाँ जाकर देखा ज़रूरत दवा की ही थी।—रात-भर वह मेरे हाथ की दवा पीती रही, सूई लेती रही। भोर होने के पहले, वह चली गयी। जाते-जाते मुझे पुकार गयी।

बनर्जी के मुखड़े पर बहुत देर के बाद एक रेखा उभरी—दर्द की! फिर बोला, "उसके बाद रोज़ आने लगी!'''फिर वही सवाल, प्रश्नों की झड़ी, 'हुए न? तुम मेरे दुलहा, हुए तो मेरे साथ चलते क्यों नहीं?'''' कब तक उसकी बात को टालता! · एक दिन, उसने मुझे पुकारा। मैंने जवाब दिया, साथ हो लिया। वह हँसी, खिलखिलाकर उस दिन से हम साथ हैं। '''"

"साथ हैं?" प्रायः सभी के मुँह से एक ही साथ निकला।

"हाँ! साथ-साथ!'''थोड़ी देर भी अलग होता हूँ तो वह पकड़

जाती।"

कामत-बँगले के ठीक ऊपर, आकाश मे कोई जल-पक्षी पुकार उठा।

बनर्जी उठ खडा हुआ, अचानक, "वही·· बुला रही है !·· अच्छा तो, अभी मैं चला। आपके मित्र रायजी आवें तो··।" बनर्जी ने बात अधूरी रखकर मेरी ओर हाथ बढाया, "आप चाहेगे तो, फिर मिलूंगा। आज, बस··।" बनर्जी की हथेली अपने हाथ मे लेते ही मैं सिहर उठा—बर्फ··· ज्जा !

बाहर फिर एक पछी की किलकिलाहट सुनायी पड़ी। रायजी के कुत्ते ने इतनी देर के बाद खामोशी तोड़ी। एक बार 'हुँक' कहकर उठ बैठा। इतने लोगो के बीच खडा हँसता-मुस्कराता मुझसे हाथ मिलाता हुआ वह गायव हो गया। हम सभी ने एक ही साथ कुछ पुकारने की चेष्टा की। सिर्फ क्रा-दोस्त की आवाज फूट सकी—'ह-हो य-हो-य।'

मैं एक कट्टर आर्यसमाजी का अकाल परिपक्व वेटा—भगवान को मनुष्य का मानव-पुत्र माननेवाला ! 'जय माँ काली, जय माँ काली' जप रहा था कातर स्वर मे।

बाहर, घोडे के टापो की खटपटाहट सुनायी पडी। कुत्ता बँगले के ओसारे से नीचे कूद गया और उछल-कूदकर भूँकने लगा।···किसी ने मेरा नाम लेकर पुकारा। खिडकी से बाहर झाँकने की हिम्मत नही हुई। गीत गुनगुनानेवाले मित्र ने कहा, "रायजी। रायजी आये।" लेकिन, यह रायजी, रायजी ही है, क्या सबूत ?

रायजी ने सबकुछ समझ लिया पलक मारते, "ओ ! बनर्जी आया था शायद ?"

हम सभी एक साथ बोले, "हाँ।"

रायजी ने पूछा, "हाथ भी मिलाया किसी से ? किससे मिलाया ?"

"मुझसे !" मैंने कहा।

रायजी ने प्रफुल्लित होकर, "मैंने कहा था न ? मेरा खयाल है वह किसी और से हाथ मिलाना भी नही।—क्यो ?···क्या होगा ?"

रायजी स्टोव को फिर से जलाने की तैयारी मे लगे। उधर स्टेशन से बैलगाड़ी भी लौट आयी। खाली नही, पैंटमान से रायजी के गाड़ीवान

नागेमर गम की दोस्ती है, पुरानी।

'होगा क्या। भूत से दोस्ती हुई है। निभाइए…!"

(मेरी कहानी खत्म हुई। 'गब्बे हाउस' में सन्नाटा छाया रहा। मित्र रायजी के ओठों पर अर्धविधिरोचित मुस्कराहट जस की तस बनी रही। सचालक ने अपने भारी-भरकम शरीर को तौलते हुए 'गब्बे हाउस' के सदस्यों से पूछा, 'वह कुत्ता अर्धमृतकावस्था में क्यों पड़ा रहा समझे?' फिर, उन्होंने इसकी प्रेतवैज्ञानिक व्याख्या की।

पिट्ठी सदस्य को माननीयता प्राप्त हो गयी! किन्तु, उस रात बाहर सोनेवालों ने कई बार उठते-बैठते और करवट लेते हुए व्यक्तियों से अकचकाकर पूछा, 'कौन? कौन?'

सुबह को रायजी ने मुझे उठाकर पूछा, 'कौन-सी कहानी थी रात जो लोग भोरे-भोर मुझे तंग कर रहे हैं कि बनर्जी से आपकी पहली भेंट कैसे हुई? ''कौन है यह बनर्जी?' 'क्या कहूँ?' मैंने बीच में ही रायजी की हुपेली टोप दी। रायजी विहँस पड़े। पूरे एक सप्ताह के बाद रायजी मुखबीर हो गये, यानी मेरी कहानी को कोरी काल्पनिक प्रमाणित कर दिया। उन्होंने तो 'गब्बे हाउस' के सदस्यों से मिल-जुलकर मेरी पीठ की अच्छी मरम्मत की। मार रहे थे या ठोक रहे थे, याद नहीं, किन्तु, सचालक ने कहा, 'मैं इसको काल्पनिक कहानी नहीं मानता। हमने अपनी आँखों से देखा है। तुमने हाथ मिलाया है। रायजी के कहने से क्या होता है, कहानी पढ़ते समय वहाँ रायजी का कुत्ता जिस अवस्था में था, कहते समय रायजी स्वयं उसी अवस्था में,''तुम्हारी सदस्यता कोई नहीं छीन सकता!!')

1945 से लेकर 1952 तक कल्पना प्रसूत प्रशान्त बनर्जी की याद करता, वह हाथ बढ़ाता, मैं भी हाथ बढ़ाता। और अन्त में मैं हाथ मलकर हँसने लगता अपने-आप पर!

बीमार पड़ा अस्पताल में दाखिल हुआ। काला-आजार अथवा गुलाबी-आजार नहीं! एकदम खाँटी ब्लायट प्लेग! ''मिस्त्री ने देखा, आक्सिजन सिलिंडर घसीटकर मेरे पलँग के पास लाया जा रहा है। समझ लिया, कुछ देर के बाद पलँग को घसीटकर बाहर किया जायेगा।

कहते हैं, फेंकटे का रोगी मुँह में पानी देनेवाले को भी पहचानता है।

गो-दान की सारी विधियों को समझता-बूझता हुआ, धीरे-धीरे सो जाता है सदा के लिए। मेरा निजी अनुभव है।

आँखें झपकी, समझ गया—चिरनिद्रा आ गयी ! बर्फ ! किसी ने मेरे ओठ पर बर्फ का टुकडा रख दिया। डेटॉल की गन्ध से समझ गया, नर्स की उँगलियाँ है, नाक के पास। आँखे खोलने की चेष्टा की, किन्तु किसी को देखकर रुक गया। आँखें मूँदा ही रहा। "·· कौन ? प्रशान्त बनर्जी ?"

उसने कहा, "हाँ दोस्त ! उस दिन हाथ मिलाकर फिर भूल ही गये। कभी तो याद किया होता !···चलो ज़रा सरको ! आज मुझे भी सोने दो अपने पास। खटमल-बटमल तो नही है, पलँग मे !" वह मेरे पास आकर सो गया। "गर्म·· गर्म···आह ! डॉक्टर···प्रशान्त !···बनर्जी·· दोस्त···मैं इतनी गर्मी मे पिघल जाऊँगा।"···उसने करवट लेते हुए कहा, "वाह रे मोम का पुतला ! पिघल जायेगा ! चुपचाप सो रहो ! देखूँ किस तरह पिघलते हो !"

सुबह आँखें खुली और मुझे लगा—मैं स्वस्थ हूँ। एकदम स्वस्थ। डॉक्टर हुई राउण्ड मे आये और मैंने मुस्कुराकर कहा, "मै स्वस्थ हो गया।" डॉक्टर ही बहुत देर तक···मेरी आँखों मे आँखें डालकर—मुझे देखते रहे ! ·· कुछ बुदबुदाये मन-ही-मन। उनकी बुदबुदाहट मेरे मन मे बहुत जोरो से प्रतिध्वनित हुई—ला-इ-लाही···!

अस्पताल से भला-चंगा होकर बाहर निकला ! कुछ दिनों तक अपनी बदली हुई सूरत और निखरी हुई काया को निहारता और पूछता, अपने से—मैं क्यों लौट आया ? मुझे क्यो लौटाया गया ? किसलिए; मैं किस काम का हूँ ?—कोई जवाब नही !

एक रात को छटपटा रहा था कि मेरे अन्दर प्रशान्त बनर्जी ने आवाज दी—

"क्यों भाई ? नींद नही आ रही ?···मैं जानता हूँ। इस अनिद्रा से लाभ क्यो नही उठाते ?"

"प्रशान्त मुझे बताओ मैं क्या करूँ ?"

"मेरी सहायता लोगे ? दोस्ती तोड़ोगे तो नही ?"

"कभी नही ?"

—उठो ! तुम्हारे पास 1950 की एक मोटी, किन्तु एकदम निष्कलंक डायरी है। ले आओ। कलम पकड़ो। लिखो—प्रशान्त की कहानी, कमली की कहानी। हमें जीवन दो। हम तुम्हारे साथ रहेंगे। हम दोस्त हैं। और मैंने शुरू कर दी प्रशान्त की कहानी, कमली की कहानी···अन्ततोगत्वा अपनी ही कहानी···।

आपने पढ़ी है ?

[ज्योत्स्ना / जनवरी 1959]

कस्बे की लड़की

"लल्लन काका ! दादाजी कह गये हैं कि लल्लन काका से कहना कि सरोज फुआ के साथ'' !"

लल्लन काका अर्थात् प्रियव्रत ने अपनी भतीजी बन्दना उर्फ बून्दी को मद्धिम आवाज में डाँट बतायी, "जा-जा ! मालूम है जो कह गये है।"

बून्दी अप्रतिभ हुई किन्तु उसके ओठो पर वंकिम-दुष्टता अंकित रही और लल्लन काका की मद्धिम झिड़की की कोई परवाह किये बगैर अब दादाजी की आज्ञा सुनाने लगी, "दादीजी कहती है कि सरोज फुआ नहा रही है। लल्लन काका से कहो, जल्दी तैयार होकर नाश्ता कर ले। सरोज फुआ को बहुत जगह जाना है। और रिक्शावाला'''।"

"जा-जा !" प्रियव्रत पूर्ववत् पाइप पीता रहा।

"बून्दी आँगन में लौटी तो उसने मुंह में पेन्सिल डालकर लल्लन काका की नकल करते हुए सुना दिया, दादी को—"जा-जा !"

दादी अचार-पापड़ के मर्तमानों को धूप में डाल रही थी। बडबड़ायीं, "सभी कामचोर हैं।" बून्दी ने सविनय-सदुलार-निवेदन के सुर मे कहा, "दादी-ई-ई ! एक हरे मिर्च का अ-चा-र'''!"

"जा-जा बडी पतली जीभ है तेरी।"

बून्दी का मुंह लटक गया। दादी ने मर्तमान से एक हरी मिर्च निकालकर देते हुए कहा, "जा भगेलू से कह, सामनेवाली दूकान से'''।"

वृन्दी दाँत से मिर्च को काटती मिसियायी, "नि-ई-ई ! सारी सुबह मैं इधर-उधर करती रहूँगी तो स्कूल कब जाऊँगी ? जिधर जाओ, उधर ही जा-जा ! जा-जा !! सरोज फुआ बाथरूम से बाहर ही नहीं होतीं । मैं कब नहाऊँगी, कब खाऊँगी ''यह लो, आ गयी गाड़ी स्कूल की !"

प्रियव्रत सुबह से ही तनिक झुंझलाया हुआ है । रात-जैसी गर्मी हजारीबाग में कभी नहीं पड़ी । नींद नहीं आयी रात-भर । हालाँकि परिवार के और लोग हल्की ऊनी चादर डालकर सोये थे । प्रियव्रत की माँ बारहों महीने रजाई ओढ़ती है । हल्की-फुल्की रजाई गर्मियों में और भारी सर्दियों में।''' और उनींदी रात की प्रतिक्रिया दूसरे दिन सुबह बाथरूम से ही शुरू होती है । दाढ़ी कई स्थान पर कट गयी है । कनपटी के पास मीठा-मीठा दर्द है । वह सुन चुका है । बाबूजी का हुक्म, 'लल्लन से कहना सरोज को जहाँ-जहाँ जाना है ले जाय । बेचारी अकेली कहाँ-कहाँ जायेगी ?' हुँह ! ' सरोजदी देहात से अकेली पन्द्रह-पन्द्रह स्टेशन रेलयात्रा करके यहाँ सकुशल आ सकती है तो शहर में ही कौन दिन-दहाड़े डाके पड़ते हैं कि सरोजदी के साथ एक सशस्त्र अर्दली जाय ?—पुरुष माने सशस्त्र !'''और सरोजदी का रूप भी इतना मारात्मक नहीं ! '

प्रियव्रत सुबह से ही सरोजदी के सम्बन्ध में सोच रहा है । सरोजदी ! बाबूजी के एक मुफस्सिल के मुवक्किल मित्र की बेटी ! एकदम देहातिन नहीं कह सकते सरोजदी को । मैट्रिक पास करके गाँव के स्कूल में पढ़ाती हैं । स्कूल के काम से ही आयी हैं । इसके पहले भी बहुत बार आयी हैं । मिडिल की परीक्षा देने आयी थीं । सरोजदी के बाबूजी भी साथ आये थे । मैट्रिक का इम्तहान देने आयी, अकेली । अकेली नहीं दूर के एक चाचा पहुँचा गये थे । सरोजदी के पिता की मृत्यु उसी साल हुई थी । लेकिन सरोजदी के पिता ही क्यों, सरोजदी भी जब आयीं, कभी खाली हाथ नहीं आयीं । घी, शहद, महीन चावल, दही-पपीते—सब विशुद्ध ! जब से देख रहा है प्रियव्रत सरोजदी ऐसी ही हैं । सदा से ' ।

प्रियव्रत सोच रहा है, कैसा अन्याय है ? एक ओर सरोजदी हैं जो इतनी चीजें, इतना प्यार से लेकर आती हैं और दूसरे ही दिन भाईजी और भाभीजी का मुँह लटक जाता है । तीसरे दिन माँ भी उखड़ी हुई बातें

करने लगती हैं उनसे। भाभी चुपके-चुपके मुँह बनाकर कहेंगी, 'इतने जोर से खुर्राटा लेती है सरोज। घण्टो बाथरूम बन्द रखती है, सरोज'''आज 'उनके' प्राइवेट रूम मे चली गयी सरोज। वे अपने दोस्तो के साथ ड्रिंक कर रहे थे और यह भैयाजी-भैयाजी कहकर क्या-क्या रोने-गाने लगीं।' भाभी बहुत स्वार्थी है। लेकिन, दूसरी ओर भाभी की आध दर्जन बहने या भाईजी के साले की सहेलियाँ खाली हाथ आती है। बिना मक्खन के रोटी नही खाती हैं और भाईजी की गाडी का इजन हमेशा गर्म रहता है उन दिनो—बोकारो, कोनार, तिलैया, रामगढ, राँची'''। सरोजदी ने कभी नही कहा कि बिना कार के मैं एक कदम नही चल सकती। क्या सरोजदी के मन मे भाईजी की गाड़ी पर चढने की वासना नही हुई होगी ? कौन जाने !'''

सरोजदी साँवली नही, काली है। कद मँझौला है। मोटी नही, देह दुहरी है। सम्भवत: किसी ग्लैण्ड की गडबड़ी के कारण उसकी बोली मे तनिक गूँगेपन का सुर मिला हुआ है। चलते समय हर डेग पर अस्वाभाविक ढग से जोर देती हैं और प्रसन्न होकर हँसते समय मुँह से लार टपक पड़ती है, यदा-कदा। ओठ सदा भीगे रहते है।

प्रियव्रत को याद है, मैट्रिक की परीक्षा देने आयी थी सरोजदी। बाबूजी का मुहर्रिर इब्राहिम रोज टमटम पर साथ जाता था। फिर, चार बजे जाकर ले आता था। उस बार भाभी ने झूठ-मूठ सरोजदी पर आरोप लगाया था। वून्दी के गले की सोने की 'सिकरी' भाभी के बक्स से ही निकली थी !

सरोजदी बाथरूम से बाहर आ गयी, नहा-धोकर।''''लल्लन बाबू !" प्रियव्रत ने अब अपने से सीधा सवाल किया, "क्यों लल्लन बाबू, भाईजी की किसी साली या भाईजी के साले की किसी साली के साथ एक रिक्शे पर, शहर घूमने मे तुमको कभी कोई ऐतराज होता ?"

अन्दर आँगन मे भी भगेलू से कुछ कह रही है, "क्या भगेलू जायेगा सरोजदी के साथ ?"

भाभी कहती हैं, "तो क्या हुआ ? रिक्शा के पायदान पर बैठेगा भगेलू।"

बाबूजी बाहर से आ गये।

साथ में हैं एक दूसरे वृद्ध-देवघर के अजनी बाबू वकील। बाबूजी अब नियमानुसार अपने पुत्रों की निन्दा से शुरू करेंगे, और हर बेटे की तारीफ तनिक लफ्फ़ोल से अन्त में करेंगे, "हां, बड़ा देवव्रत—मन्नन—इम्पीरियल टुबाको में है। बोला, 'सरकारी नौकरी नहीं करेंगे, चाहे सरकार अपनी हो या बिरानी।'··· नहीं करोगे तो मत करो। साली, सरकारी नौकरी में धरा ही क्या है, अब! मँझला लल्लन—प्रियव्रत—एम.ए. करके तीन साल से बैठा है। वह भी सरकारी नौकरी नहीं करेगा। हां, हां, आपने ठीक पहचाना है, वही प्रियव्रत! कविता ही लिखता है और सबसे छोटा टहन—सत्यव्रत भागकर नेवी में चला गया। चिट्ठी आयी तो मैंने भी कहा, 'डूबने दो कम्बख्त को। नेवी में जाय या एयरफोर्स में।' लिख दिया, 'मेरा लड़का सबकी राजी-खुशी से नेवी में भर्ती हो रहा है।' और क्या करे? इस साल ट्रेनिंग खत्म करके अफसर हो जायेगा।··· भगेलू! कहाँ जा रहा है भगेलू? लल्लन कहाँ गया? सरोज के साथ भगेलू क्यों जायेगा? मैं जाऊँगा।"

प्रियव्रत धड़फड़ाकर उठा—'अब एक सप्ताह घर की शान्ति गयी। दिन-रात बड़बड़ाते रहेंगे। ब्लडप्रेशर बढ़ेगा। डॉक्टर विनय आयेंगे, फिर दोनों मिलकर घर-भर के लोगों की दुर्गत कर डालेंगे। अन्दर जाकर बोला, 'किसने कहा कि मैं नहीं जा रहा हूँ?"

कमरे में कपड़े बदलती हुई सरोज ने कहा, "लल्लन को छुट्टी नहीं है तो भगेलू ही चले न!"

माँ बोली, "नहीं सरोज, लल्लन तैयार है।"

सरोज कमरे से बाहर आयी। चप्पलों की बेतरतीबी से खिसियानी हुई। भीगे ओठों पर सुरजनोचित मुस्कराहट छायी हुई···खिलखिलाती मुस्कराहट!

रिझानेवाले की दृष्टि और मन्द मुस्कराहट को परखता है प्रियव्रत। वह खिड़की से खिसककर, एक किनारे जा बैठा। सरोज पास आकर बैठी। सरोजकी कोई सस्ता किन्तु चालू पाउडर लगाती है, शायद। केश में कोई आयुर्वेदिक तेल डालती है क्या? साड़ी तो हैण्डलूम की है। एक बार प्रियव्रत

की भाभी कह रही थी—सरोज का ब्लाउज सर्दी के मौसम में भी बगल से भीग जाता है। अभी तो भीगा हुआ नही है? नही, भाभी अधिक नही, तनिक निष्ठुर भी है।···

रिक्शाचालक ने पहला प्रश्न किया, "मेमसाहब राँची से आयी है क्या?" प्रियव्रत उसे डाँटना चाहता था, लेकिन इसके पहले ही सरोज बोल पडी, "नही भैया! मैं हँसुआ से आयी हूँ। शिक्षक-सघ का दफ्तर देखा है?"

"कीचक सघ तो···।"

"मुझे मालूम है।" प्रियव्रत ने कहा, "चलो, मदनवाड़ी रोड।"

प्रियव्रत का घर शहर से तीन मील दूर है। तीन पहाडी के पास, इस गाँव मे प्रियव्रत के पिता ने जब घर बनवाया था तो लोग हँसते थे—वकील साहब जंगल मे बस रहे है। आज, इस गाँव मे बसने के लिए शहर के लोग, जमीन की डाक बोलकर भी जमीन नही पा रहे है।

सरोज अपनी देह को भरसक सकुचित करती हुई बोली, "लल्लनजी! ठीक से बैठो, आराम से···।"

गाडी कुछ दूर आगे बढी तो सरोज ने यहाँ की सड़को पर अपना मन्तव्य प्रकट किया, "हजारीबाग की सड़को से मुझे बड़ी चिढ होती है। दस कदम पर चढाई और दस कदम पर उतराई। हजारीबाग की सब चीजें मुझे अच्छी लगती है, इन सड़को को छोड़कर।"

प्रियव्रत ने बात को मोड़ने के लिए पूछा, "कहाँ-कहाँ जाना है आपको?"

सरोज ने कहा, "पहले शिक्षक-सघ के दफ्तर मे, फिर शिवयोगी बाबू के यहाँ होते हुए स्कूल इन्स्पेक्टर साहब के डेरे पर।"

प्रियव्रत ने पूछा, "यह शिवयोगी बाबू कौन हैं?"

प्रियव्रत ने लक्ष्य किया, सरोजदी हर बार बोलने के पहले एक अस्फुट हँसी हँसती है।

"हँहँ! शिवयोगी बाबू हैं हमारे हँसुआ रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर के दामाद। हर बार स्टेशन मास्टर साहब मेरे हाथ से कुछ-न-कुछ भेजते हैं। इस बार नाती के लिए 'जन्तर' बनवाकर भेजा है।"

सामने चढ़ाई थी। यहाँ सभी रिक्शावाले रिक्शे से उतरकर गाड़ी खींचते हैं। लेकिन इस रिक्शावाले ने दोनों को उतर जाने के लिए कहा. "बिना उतरे ई-ढुन्दु मन, ढाई-ढाई मन का सहास ?"

प्रियव्रत को अपना गुस्सा उतारने का मौका मिला। पैसा चुकाते हुए बोला, "तुम जा सकते हो। लेकिन फिर कभी कोरगाँव की ओर कोई सवारी लेकर मत आना। समझे ?"

दोनों उतर पड़े। अभी तुरत दूसरा रिक्शा मिल जायेगा।

मजरे हुए आम और जामुन के युग्म-पेड़ के नीचे वे जा खड़े हुए। यहाँ के लोग कहते हैं—जुड़मा गाह ! झड़ती हुई मजरियों के कई छींटे, जामुन के कुछ फूल सरोज के सिर पर झरे। कवि प्रियव्रत को पिछले साल रेडियो से सुने हुए एक लोकगीत की याद आयी—जिसकी पंक्तियाँ याद नहीं, अर्थ है—'ओ गोरी ! तू आज रात फिर किसी कारण —मजरे हुए आम के तले जाकर खड़ी हुई थी—निश्चय ही। तेरे बालों के लट जटा गये हैं। मजरी का मधु चू-चूकर तेरे सिर पर गिरा है। ओ गोरी ! तू आज रात फिर किसी महुए के तले जाकर खड़ी थी—तेरे बालों से महुए के दारू की बास आती है। मेरी आँखें झपक रही हैं— मतिया गयी है—तेरा जूड़ा कैसे बाँधूं ?'

सरोज बोली, "हूँह, लल्लनजी ! मैंने तुमको बेकार कष्ट दिया।"

राँची-रोड पर एक बग्घीगाड़ी दिखायी पड़ी। प्रियव्रत ने पूछा, "घोड़ा-गाड़ी पर चढ़ियेगा।" सरोज के कण्ठ से सिर्फ 'हूँह' निकला। प्रियव्रत ने बग्घीवाले को आवाज दी।

घोर श्यामवर्ण, मँझोली, दुहरी सरोज सुफेद साड़ी और सुफेद ब्लाउज में सभी का ध्यान आकर्षित करती है। घड़ी की पट्टी भी सुफेद, चप्पल के फीते भी। घोड़ागाड़ीवाले ने गौर से सरोज को ही देखा। प्रियव्रत को यह पहचानना है।

बग्घी पर आमने-सामने बैठने की जगह थी। किन्तु सरोज जिस तरह रिक्शे पर बैठी थी, उसी तरह प्रियव्रत से सटकर बैठी। इस तरह सटकर बैठने की कोई जरूरत नहीं थी। जगह काफी चौड़ी थी ! सरोज बोली, "इस चढ़ाई-उतराई के समय मेरी जान निकल जाती है। लगता है अब

खाया-पिया निकल जायेगा। हुँह !"

हर चढाई-उतराई पर सरोज ने तमाशा किया। उतराई के समय प्रियव्रत की एक कलाई जोर से पकड़कर आँख मूँदे हँसती-खिलखिलाती रही। प्रियव्रत को लाज आयी।

शिक्षक-सघ के दफ्तर मे जिस अधिकारी से मिलना था, सरोज की उससे फाटक पर ही भेंट हो गयी। काम भी हो गया—अगली मीटिंग के बारे मे पूछना था। अधिकारी महोदय बार-बार प्रियव्रत की ओर देखते ही रहे। फिर बोले, "आप प्रियव्रतजी है न ?" जी हाँ, सुनकर भी अधिकारी महोदय का कौतूहल कम नही हुआ, शायद।

"चलो सरोजदी ! शिक्षक-संघवाला काम तो शिक्षक-संघ के बाहर ही हो गया।" गाडी पर जान-बूझकर दूसरी ओर बैठते हुए प्रियव्रत बोला और सरोज पहले तो सामनेवाली गद्दी पर बैठी। फिर उठकर प्रियव्रत के पास जाकर, उससे सटकर बैठी। सरोज ने चलती हुई गाड़ी में प्रियव्रत से दबी हुई आवाज मे कहा, "लल्लनजी, तुम साथ थे, इसलिए जल्दी छुट्टी मिल गयी। नही तो, यह रामनिहोरा प्रसाद मुझे बेकार बैठाकर तरह-तरह की बातें करता। शादी-ब्याह की बात पूछनेवाला यह कौन होता है, भला ? बोलो तो ? और बातें करते समय बातें करो—यह रह-रहकर पीठ पर थप्पड मारने की और बाल पकड़कर खीचने की जैसी भद्दी आदत ? अपने काकाजी भी तो बाबूजी के दोस्त थे। कभी ऐसा नही करते। बोलो तो लल्लनजी, क्या यह ठीक है ?"

प्रियव्रत को हँसी आयी। वह पूछना चाहता था, क्यो नही ठीक है सरोजदी ? लेकिन वह कुछ बोला नही। हँसता रहा। सरोज कुछ क्षण बाहर की ओर देखती रही। फिर, दबी आवाज मे ही बोली, "अच्छा लल्लनजी, तुम नौकरी करोगे तो तुम भी गाड़ी रखोगे न ?"

"यदि गाड़ी रखने लायक नौकरी मिली…।"

"हुँह तुमको भला गाड़ी रखने लायक नौकरी नही मिलेगी ?"

प्रियव्रत चौंका।…तो सरोजदी का मुखड़ा भी कभी-कभी सुन्दर दीखता है ? सरोजदी जब भाव-शून्य दृष्टि से उसको देखती है, सुन्दर लगती है। उसने पूछा, "क्यो सरोजदी ?"

सरोजदी इस बार मुस्करायी नहीं। और भी दबी आवाज में बोली, "तुम सुन्दर हो। जिसमें रूप और गुण दोनों हों, उसी को ऊँची नौकरी मिलती है।"

प्रियव्रत का चेहरा लाल हो गया। उसने कहा, "यह किसने कहा है तुमसे ?"

"रामभाई ने। रामभाई कहते थे, व्यक्तित्व के बिना विद्वता कुछ नहीं। यदि व्यक्तित्व होता तो राम भाई भी···।"

हजारीबाग चौक पर हमेशा की तरह भीड़ थी। गाड़ीवान ने पूछा, "भैयाजी ! मायाजी बोल रही थी, चौक पर कुछ खरीदना है।" सरोज भूल गयी थी कि उसे कुछ खरीदना है। स्कूल की लड़कियों ने कापी-किताब पेन्सिल लाने के लिए पैसे दिये हैं। सरोज झोले से डायरी निकालकर पढ़ने लगी—यशोदा—तीन कापी रूल की हुई, दो बगैर रूल। जगमती—भारतवर्ष का भूगोल, साहित्यदर्पण, छोटी नीलू—एक दर्जन जलछवि !···

सरोज हमेशा जिस दुकान से सामान खरीदती है उसी दुकान में जायेगी। पास ही प्रियव्रत के मित्र, हिमांशु की दुकान थी। उसने कहा भी, "सरोजदी, इस दुकान में ···।" लेकिन सरोज ने उधर नजर उठाकर देखा भी नहीं।

दुकानदार-छोकरा राखालचन्द्र उर्फ बावला ने सरोज को देखकर एक विचित्र मुखमुद्रा बनायी और अभद्रतापूर्ण आँखें नचाकर पूछा, "कहिए, कहिए। बहोत दिन बाद···।" प्रियव्रत पर दृष्टि पड़ते ही बावलाराम भवाक् हो गया। तुरन्त भद्र हो गया उसका चेहरा। सरोज डायरी खोलकर धीमी आवाज में पढ़ती गयी और प्रियव्रत जोर-जोर से दुहराता गया।

दुकान से बाहर निकलकर सरोज बोली, "इस बार तुम साथ थे, इसलिए उसने मुझे मीठी गोलियाँ नहीं दीं। नहीं तो सबर्दस्ती दर्जनों मीठी गोलियाँ झोले में डाल देना और जिद् करके एक गोली दुकान में ही बैठकर चूसने को कहना। चाहे एक चीज लो या दस, एक घण्टा अटकायेगा यह लड़का।···बेइमान नहीं, लेकिन !"

सामने, 'विवेकानन्द मिष्ठान्न भण्डार' में बैठकर चाय पीते हुए लोगों

ने आँखें फाड-फाड़कर सरोज और प्रियव्रत की ओर देखना शुरू किया। सरोज बोली, "विवेकानन्द का कालोजाम नाभी है। है न ? हुँह !" सरोज के पैर लड़खडाये। प्रियव्रत ने पूछा, "कालाजाम खाओगी सरोजदी ?"

"हुँह ! तुम नही खाओगे ?"

विवेकानन्द मिष्ठान भण्डार मे कई मिनटों तक 'कालोजाम, कालोजाम' का गुंजन होता रहा ! डी. वी. सी. के बगाली कर्मचारियो के दल में काना-फूसी शुरू हुई, "कालाजामेर सगे चमचम ?" एक ने ढाका की बोली मे कहा, "एबार द्याशे (अर्थात् देशे) एड्डा काईनी ब्यार हुदद्दे—नामडा काक-होसिनी !…कामहृसिनी ! कालोजाम !!"

प्रियव्रत ने सब समझा। अच्छा हुआ, सरोजदी ने कुछ नही समझा। स्वाद ले-लेकर कालाजाम का रस जब प्लेट मे जीभ लगाकर चाटने लगी तो प्रियव्रत ने पूछा, "और मँगाऊँ कालाजाम ?"

"हुँह ! पेट फट जायगा जो।"

सरोज के इस जवाब से प्रियव्रत को फिर लाज आयी।

किन्तु, इस बार गाडी में वह प्रियव्रत के सामने बैठी, "चलो बटम बाजार !"

प्रियव्रत ने देखा, सरोजदी डकार लेते समय और भी असुन्दर हो जाती हैं, उनके गीले ओठ और भी गिलगिले हो जाते है। डकार लेने के बाद सरोज ने बताया, "रामभाई को भी कालाजाम पसन्द है बहुत।"

गाडी बटम बाजार की ओर मुडी।…फिर उतराई ? सरोज उठ खड़ी हुई और टलमलाकर प्रियव्रत पर गिर पड़ी। "तुम भी गाडी से बाहर गिर पडते छिटककर…हुँह !!"

हठात् सरोज ने फिर मद्धिम आवाज में पूछा, "अच्छा लल्लनजी ! मैं बहुत काली हूँ।" याने मुझसे भी ज्यादा काली होती है या नही…।

प्रियव्रत ने समझा, पूरा प्रश्न भी नही पूछ सकी सरोजदी। क्योंकि प्रियव्रत का चेहरा अचरज और लाज से अजीब-सा हो गया था। सरोज ने फिर पूछा, "मैं बहुत मोटी हूँ ? हुँह !"

प्रियव्रत को तुरन्त जवाब सूझा, "मोटी नही।…देहात मे स्वास्थ्य जरा अच्छा रहता ही है।"

सरोज बोली, "रामभाई तो कहते हैं कि तुम्हारा तन काला है, पर मन काला नहीं— सादा है।"

प्रियव्रत ने इस बार सरोज के राम भाई पर विशेष ध्यान दिया'''राम भाई ने कहा है, व्यक्तित्व के बिना ''राम भाई को कालाजाम प्रिय है'''राम भाई कहते हैं कि तुम्हारा तन'''। प्रियव्रत ने राम भाई के बारे में कुछ नहीं पूछा, किन्तु।'''

शिवयोगी बाबू के घर पहली बार नहीं आयी है सरोज। लेकिन कभी तो इतनी खातिरदारी नहीं हुई?'''हुँह! सारे परिवार के लोगों ने मिलकर दोपहर के भोजन और विश्राम के लिए हार्दिक आग्रह किया तो सरोज प्रियव्रत का मुँह देखकर कुछ देर तक सिर्फ हुँह-हुँह करती, हँसती रही। प्रियव्रत ने बग्घीवाले को विदा किया।

साढ़े तीन बजे चाय पिलाकर, शिवयोगी बाबू के परिवारवालों ने छुट्टी दी। स्कूल इन्स्पेक्टर से प्रियव्रत के बड़े भाई साहब की मित्रता है। इसलिए तय हुआ कि वहाँ का काम भाईजी करवा देंगे। सरोज मान गयी।

प्रियव्रत ने पूछा, "और कोई काम बाकी तो नहीं रहा?"

सरोज उदास हो गयी अचानक! बोली, "नहीं लल्लनजी।"

"तो अब घर चलें?"

"चलो।"

पुलिस-ट्रेनिंग-कालेज के पास एक सड़क, उत्तर की ओर केनाडी, पहाड़ी नेशनल पार्क जाने के लिए निकली है। सरोज ने साइन-बोर्ड पढ़कर दुहराया, "नेशनल पार्क जाने का रास्ता।'''नेशनल! हुँह!! नेशनल पार्क में क्या है लल्लनजी?"

प्रियव्रत के मुँह से नेशनल पार्क का वर्णन सुनकर सरोज उत्तेजित हो गयी। फिर तुरत उदास होकर बोली, "नहीं, लल्लनजी! अब मैं ज्यादा परेशान नहीं करूँगी तुमको। तुम्हारा दिन का सोना खराब किया मैंने।"

प्रियव्रत ने रिक्शावाले से नेशनल पार्क चलने को कहा। सरोज बोली, "तुम्हारी इच्छा नहीं तो घर लौट चलो लल्लनजी!"

"मैं रोज जाता हूँ, इसी समय।'' वहाँ मेरी अपनी जगह है,

सरोजदी।" प्रियव्रत हँसकर बोला।

मोड़ पर सरोज ने फिर डकार लिया।

बहुत दूर तक उतराई है, कोना-कोठी के पास। रिक्शेवाले यहाँ पैडिल चलाना बन्द कर देते हैं। बहुत देर तक 'फ्री ह्वील' की करकराहट होती रहती है—'क्रिरि-रि-रि-रि-रि-रि···।' सरोज की सारी देह में मानो गुदगुदी लगा रही है यह किरकिरी···रि-रि-रि-रि। हँह ! हँह !!

केनाडी पहाड़ी करीब आती गयी और सरोज अपने-आप हँसती रही। एक नील गाय भागी जा रही है ! सरोज अचरज से मुँह बाकर देखने लगी। राल टपकी इस बार।·· खरगोश फलाँगता हुआ झाड़ियों में गया—हँह ! पहाड़ी नदी की पतली धारा पर अस्तगामी सूर्य की रोशनी झिलमिलायी—हँह ! पहाड़ी की चोटी के पास बादल का एक टुकड़ा—हँह ! फूलों से लदा हुआ बन-तगर का पेड़—हँह ! हँह···।

रिक्शा से उतरकर सरोज बोली "रामभाई भी कहते थे कि नेशनल पार्क एक चीज बनी है—देखने की।"

वन मे मोर बोला। सरोज डरी, "हाँ लल्लनजी, सुना है नेशनल पार्क में बाघ-सिंह भी हैं ? हँह !"

प्रियव्रत हँसा, "लेकिन, सरोजदी ! एक अजब बात है कि नेशनल पार्क

"अच्छा !"

पिकनिक करके लौटनेवाली मण्डली को एक अशिष्ट लड़का [illegible]
"भाग रे ! बाइसन, बाइसन···अरणा भैंस !"

मुखर्जी-परिवार की सुन्दरियाँ, कुमारियाँ 'जमायबाबू टाइप' के एक व्यक्ति के साथ आयी हैं आज ! गाड़ी पर कलकत्ते का नम्बर है। सुन्दरियाँ बात-बात पर खिलखिला रही हैं। जमायबाबू निश्चय ही कोई गुदगुदाने-वाली कहानी सुना रहे हैं···अमलतास की छाया में। एक सुन्दरी ने न जाने क्या देखा कि चीख पड़ी, "उ-ई-ई-भूत !" बाकी लड़कियाँ खिलखिला पड़ीं। प्रियव्रत समझाता है, चीखनेवाली को वह जानता है—अंजू-अंजला सरोजदी

को देखकर ही अजना चीख पडी है।

प्रियव्रत बोला, "पहाड़ की चोटी पर 'टावर' है—वहाँ से सारा नेशनल पार्क दिखायी पड़ता है। चलोगी ऊपर ?"

"नही लल्लनजी, मुझे डर लगता है।"

"तो चलो, तुमको अपनी जगह दिखाऊँ।"

केनाडी पहाडीकी तलहटी मे बिखरा वनखण्ड केनाल और बड़ी-बड़ी चट्टानो के इर्द-गिर्द पुटुस फूल की झाडियाँ। केनाल के किनारे कदम्ब के पेड पर—ठीक एक घण्टे बाद छोटे-छोटे पंछियो का घनघोर कलरव शुरू होगा—घण्टो होता रहेगा। इन्ही चट्टानो के उस पार प्रियव्रत रोज बैठता है।

"यही है मेरी जगह। मैं इसी पत्थर पर बैठता हूँ, रोज।"

"हूँह ! बैठे-बैठे क्या करते हो ?"

इस प्रश्न का कोई उत्तर देना आवश्यक नही समझा प्रियव्रत ने। "बैठो सरोजदी ! मैं तुमको एक मजे का खेल दिखलाऊँ।"

प्रियव्रत पुटुस की एक फूली डाली तोड लाया। फूल और पत्तो को नोचकर एक छड़ी बनायी उसने, "इधर देखो सरोजदी !"

सरोज ने देखा—सामने की धरती पर लजौनी लता पसरी हुई है कुछ दूर तक। लगता है, एक गलीचा "हूँह" लज्यावती, लाजवन्ती, लजौनी, छुईमुई, "अरे-रे लल्लनजी ! यह क्या कर रहे हो ? हूँह !"

प्रियव्रत रोज इसी तरह इन सजीव लताओ को छेड़ता है, आकर। पुटुस की डाल की छडी से पहले एक क्रास बनाता है। छडी छुआता जाता है, पत्तियाँ मुँदती जाती है। अन्त मे, अन्धाधुन्ध छड़ी चलाकर सबको सुला देता है।

सरोज प्रियव्रत के इस खिलवाड को अचरज से देखती रही। जब प्रियव्रत ने सभी पत्तियो को सुला दिया तो सरोज ने एक लम्बी साँस ली। बोली, "लल्लनजी, तुम ठीक कहते हो। यहाँ आकर आदमी जानवर हो जाता है, कभी-कभी। हूँह !"

प्रियव्रत हँसा। वह अपनी जगह पर जा बैठा। उत्तर आकाश का बादल क्रमशः काला होकर झुकता जा रहा है। हवा गुम है ! भाभी ठीक ही

कहती थी। सरोज का ब्लाउज भीग गया है— बाँह के नीचे अर्द्धवृत्ताकार।

सरोज प्रियव्रत के पास आकर बैठ गयी, "एक बात बताऊँ लल्लन-जी?"

बिजली चमकी। सरोज के गोल ओठो पर भी बिजली चमकी, मानो। प्रियव्रत अवाक् होकर देखता रहा। सरोज को इस तरह लाज से गड़ते कभी नही देखा प्रियव्रत ने।

सरोज कुछ बोल रही थी, लेकिन राल टपक पड़ी तो चुप हो गयी। फिर पुटुस के नन्हे फूलो को नाखून से खोंटकर दाँत से चबाने लगी।

क्षण-भर दोनो मौन रहे।

"किस सोच मे पड़ गयी सरोजदी?" प्रियव्रत ने सरोज की देह छूकर मानो जगाया, "सरोजदी, अब चलो लौटे। पानी बरसेगा।"

सरोज हँसी, 'पानी बरसे-हँह-हम रुई नही है! लल्लनजी यह क्या कर रहे हो? लल्लन···पगला···बचपन की आदत·· हँह·· ठीक इसी तरह गोदी मे सिर रखकर·· इसी तरह मेरी छाती से सिर रगडते थे तुम···मैने रामभाई से भी कहा है···हँह···हँह·· तुम अभी भी पाँच साल के शिशु हो ···लल्लनजी···तुम जानवर हो···जानवर···हँह·· हँह·· कवि···एम. ए. ···सुन्दर-सुपुरुष तुम···इतने प्यारे·· इतने प्यारे तुम·· तुमको हँह···मैं जानवर नही बनने दूंगी···मैं ही जानवर हो गयी हूँ···लल्लनजी मुझे माफ करो·· इस कुरूपा बहन पर दया करो···! मुझे लजौनी लता की तरह मत रौंदो···!!'

प्रियव्रत ने ध्यानमग्ना नारीमूर्ति को फिर छूकर जगाया, "सरोजदी, तुम किस सोच में पड गयी यहाँ आकर?·· चलो, घर चले।"

सरोज मानो नीद से जगी, "हँह!···नही लल्लनजी, यहाँ आकर आदमी कभी-कभी देवता भी हो जाता है! देवता भी···।"

प्रियव्रत को लगा, सरोजदी अचानक सर्वांग-सुन्दरी हो गयी हैं। वह फिर अपनी जगह पर आ बैठा।

हवा का झोका आया। मेघ बरसने लगा। दोनों दो चट्टानो पर बैठे, भीगते रहे। प्रियव्रत फिर उठा। सरोज के पास गया। हाथ पकड़कर उठाया, "चलो!"

दोनों भीगते हुए जंगल पार कर सड़क पर आये। सरोज बोली, "अब मेरा हाथ छोड़ दो, लल्लनजी !···अब मैं कभी हजारीबाग नहीं आऊँगी ! रामभाई मुझे नहीं आने देंगे, अब।"

सरोज सड़क पर लड़खड़ायी। प्रियव्रत ने फिर हाथ पकड़ लिया। सरोज कुछ नहीं बोली। फिर दो बार हुँह-हुँह करके चुप हो गयी।

[धर्मयुग/11 नवम्बर, 1961]

हाथ का जस और बाक का सत्त

इस बार तीन साल के बाद गाँव लौटा।

स्टेशन के पास, बद्री भगत के पिछवाड़े में खड़े बूढ़े गूलर के पेड़ की दुर्गति देखकर समझ गया—पिछले कई महीने से इलाके में कोई भीषण शिशु-रोग फैला हुआ है और जग्गू पसारी जीवित है। ''गूलर के तने पर खाल नहीं, समझो (गाँव का) अच्छा हाल नहीं। गूलर का दूध और बाकल (वल्कल) उस अनाम शिशु-रोग की एकमात्र रामबाण दवा है—आज भी? ''जग्गू पंसारी आज भी चुनौती-भरे सुर में कहता हो—सिविल सरजण्ट हो चाहे टैनवनरजी डॉक्टर, इस रोग का नाम ही नहीं जानता कोई। दवा क्या करेगा?···

गाड़ीवान से पूछा—"क्यों कुसुमलाल! जग्गू पंसारी जिन्दा है?"

कुसुमलाल ने सुर खींचकर एक शब्द में जवाब दिया है—है—ए-ए-ए! जिसका अर्थ हुआ—हाँ, किसी तरह जी रहा है। होठों में दबे खैनी-तम्बाकू को थूककर उसने अपने वक्तव्य को स्पष्ट किया—जिन्दा तो है लेकिन, समझिए कि मुर्दा होकर जी रहा है।

"बीमार है? क्या हुआ है?"

कुसुमलाल ने बैलों को एक भद्दी गाली दी। फिर बोला, "होगा क्या?"

कुसुमलाल ने मुस्कुराने की चेष्टा की—"पिछले साल मति भरम गयी,
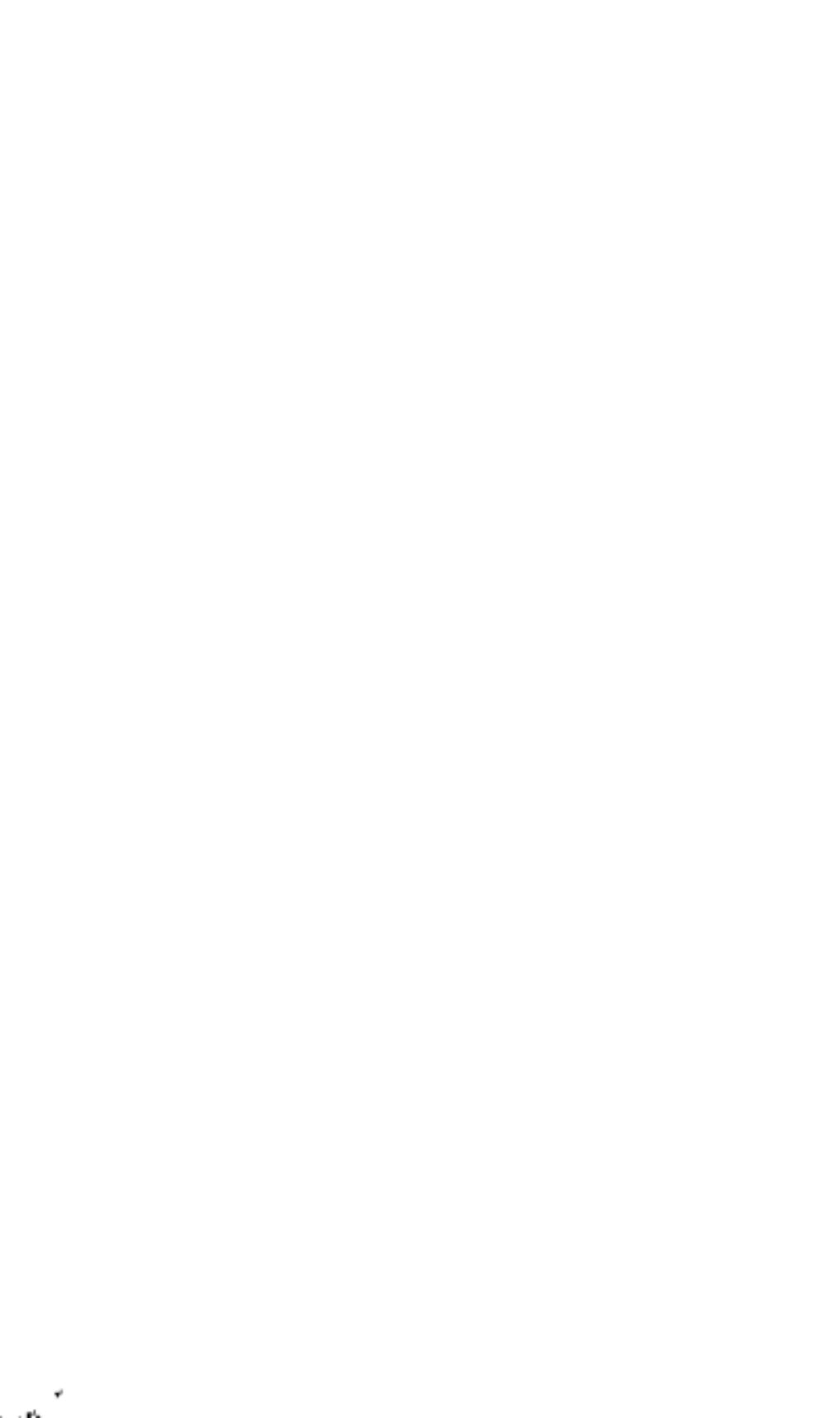
—लेकिन क्या ?

" लेकिन इस बूढ़े ने तो कमाल कर दिया। रसिकलाल की बहुरिया एक दिन जालीदार कुर्त्ता पहनकर नाच देखने गयी—बायस्कोप का। दूसरे ही दिन जग्गू बूढ़े ने अपनी जवान पहाड़िन को 'इसपिरिंगवाला मेमकाट कुर्त्ता' पहनाकर घर से निकाला कि देखनेवालों की आँखें'''।

कुसुमलाल जिस बात को 'हाइलाइट' करना चाहता है, उसे अधूरी छोड़ देता है। मुझे पूछना ही पड़ा—क्यों, क्या हुआ ? देखनेवालों की आँखें फूटी-ऊटी तो नहीं ?

कुसुमलाल ने मुझे कनखियों से पूछा। उसने चुप होने के पहले एक पंक्ति की मोटी निन्दा की—अब न उसके हाथ में जस है और न बाक में सत्त। सब पहाड़िन ने खींच लिया।

हाथ का जस, बाक का सत्त !

जग्गू के 'जस' और 'सत्त' की सैकड़ों कहानियाँ प्रचलित हैं। तीस-चालीस वर्षों से जग्गू के 'जस' और 'सत्त' के बारे में कहानियाँ सुनी जाती हैं। सम्भव है, अधिकांश कहानियाँ खुद जग्गू की गढ़ी हुई हों। छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी अचरज-भरी कहानियाँ'' गोदान के बाद जग्गू आया और रोगी की नाड़ी पर हाथ रखकर बोला —'कौन कहता है कि दम टूट गया ? बस, एक पुड़िया दवा दिया कि बूढ़ा उठकर बैठ गया।''' कसबा-शहर की मशहूर जमींदारिन को बुढ़ापे में सभी दाँत फिर से उग आये। भुने हुए चने की शौकीन बूढ़ी जमींदारिन, अस्सी साल की उम्र में पत्थर के दाँत में मिस्सी लगाती है।'

चालीस साल पहले की बात !

जब दूर देहातों में—सौ रोग की कोई-एक पेटेण्ट दवा के सिवा कोई अंग्रेजी दवा नहीं पहुँची थी। इलाके में पीलिया-रोग जोर-शोर से फैला था। औकातवालों ने शहर से बड़े डॉक्टरों को बुलाकर देखा—इस रोग की कोई दवा डॉक्टरों के पास नहीं। ' कोई अंग्रेजी दवा बनी ही नहीं है।

'''सारे इलाके में एक पीली प्रेतनी नाच रही थी। रोज दो-तीन आदमी टूटते। बच्चे आध दर्जन से डेढ़ दर्जन तक। खेलता-कूदता, भोला-भाला बालक हठात् बुखार से चीख उठता। फिर सारी दुनिया पीली'''

हल्दी की ढेरी ''रक्तहीन देह'''हल्दी में रंगी हुई लाशें !! दिन-रात गाँव के आस-पास चील-काग, कुत्ते-सियार लड़ते रहते ।

ऐसे ही दुर्दिन मे गाँव की गलियो मे एक अजीब आवाज मे किसी ने हाँक लगायी—ति-वा-आ-आ-री-ई-ई'''वैंद-वैंद-वैंद-अ-अ-द-वा-आ-आ-ई-ई-ले जा, लेजा !!

लोगो ने झाँककर देखा—पीली पगड़ी बाँधकर आगे-आगे तिवारी अर्थात् वैद्य और कन्धे पर बहगी ढोता हुआ उसका चाकर। हाँक, चाकर ही लगता था। औरतों से रोगो के बारे मे पूछताछ और दर-दस्तूर भी वही करता !

उसी दिन सारे मौजा मे कानों-कान फैल गयी बात—पीलिया कहो या पियरी चाहे हल्दिया पिशाच—चुटकी बजाकर इस रोग को उड़ा देने-वाला वैद आ गया है ।

नवटोली गाँव मे तिवारी वैद ने अपना डेरा डाला ।

उसका चाकर जग्गू, दिन-भर बैठकर जड़ी-बूटी कूटता और रह-रहकर रोगियो की भीड़ पर अभयवाणी की वर्षा करता, 'पीलिया कहो या पियरी या हल्दिया पिशाच ' अंग्रेज लोग क्या बनावेंगे इसकी दवा। पीलिया का नाम सुनते ही उनके चेहरे पीले पड़ जाते है'''वैदजी को हिमालयपर्वत से लौटते हुए साधू ने जडी बता दी थी। इसलिए, इस रोग की दवा का पैसा नही लेते। सिर्फ प्रनामी लेते हैं, धर्मशाला के लिए। गुरु का वचन ! यथा-शक्ति तथा भक्ति !!'

शक्ति के अनुसार भक्ति दिखलायी सिमराहा के साहूकार ने। एकलौते बेटे को पीलिया के पंजे से छुड़ाने के लिए मोहन साहूकार ने 'प्रनामी' में पाँच सौ रुपये की थैली थमा दी। नवटोली गाँव का नाम ही बदल गया। गाँव का नाम मशहूर हुआ हल्दिया। अर्थात् जहाँ हल्दिया यानी पियरी-जैसे भीषण रोग को चुटकी बजाकर उड़ा देनेवाला वैद आया है। हल्दिया वैद ! हल्दिया गाँव !

''कि पन्द्रहवें दिन तिवारी वैद को सूरज की रोशनी पीली दिखलायी पड़ी, दोपहर की धूप भी पीली ! तिवारी वैद ने समझ लिया—पीली प्रेतनी ही है। बीसवें दिन अपने चतुर चाकर जग्गू की सेवा और दवा के बावजूद

पियराकर गिर पड़े बैंदजी। ` लाल टेसू देह बैंद की अमलतास के फूलों के ढेर-जैसी···

आसपास के बीसों गाँव में सन्नाटा छा गया—'अब ? अब क्या होगा भगवान ?'

"घबराने की बात नहीं।" बैंद के चाकर ने कहा, "आठ साल के उम्र से ही बैंद की बंहगी बेकार नहीं ढोयी है। पीलिया कहो या पियरी चाहे जौन्डिस···।"

हजारों भयभीत प्राण फिर मुस्कराये—'सच ?'' हाँ, बैंद का चाकर बैंद से बीस ही है, उन्नीस नहीं। चुटकी बजाने की भी जरूरत नहीं। उँगली उठाकर रोगी की ओर इशारा करता है, रोग छू-मन्तर···।'

अपने सद्यः स्वर्गीय गुरु के प्रति भक्ति-भरी वाणी बोलने के बाद बैंद का चाकर जग्गू अपनी आवाज को तनिक मद्धिम करके कहता, "भाई! नीयत ही सबकुछ है। गुरु का हुकुम था कि धरमशाले के खाते में एक सौ रुपया पूरते ही फौरन कुटिया के पते पर मनिआडार कर देना—सीधे हरदुआर। निन्नानबे रुपये तक अपने पास रख सकते हो।···सो गफलत कहिए या नीयत चाहे भावी प्रालब्ध···पीलिया कहिए या भगवान की मार!"

बैंद का चाकर जग्गू! चाकर नहीं, अब सोलह आना बैंद!!

गुरु से भी तेज, जग्गू बैंद! साल-भर में, सारे इलाके से पीलिया को जड़-मूल से उखाड़कर फेंका जग्गू ने। उसने प्रतिज्ञा की थी—'या तो मैं ही यहाँ जड़ जमाऊँगा या यह पापिन पीलिया ही।' जरूर मनिऑर्डर ठीक समय पर—निन्नानबे के बाद सौ होते ही—भेजता होगा, कुटिया के पते पर—हरदुआर!

पीलिया समाप्त होते ही जग्गू ने ऐलान किया—'सिर्फ पीलिया ही नहीं, सभी असाध्य रोगों की दवा चला सकता हूँ।' लोगों ने देखा, जग्गू सचमुच अपने गुरु से भी ज्यादा सच्चा है। जो कहता है, कर दिखाता है। ···बुखार में खट्टा दही और भात, पथ्य खिलाता है। इमली की चटनी भी!

दवा और जड़ी-बूटी के अलावा जग्गू की छोटी-मोटी कहानियों का प्रभाव रोगियों पर अधिक पड़ता था शायद। दवा कूटते-छाँटते रोगी की

नाड़ी देखते समय भी उसकी कहानी बन्द नहीं होती। रोग-जाँच करते वक्त वह अपनी कहानी की मोटी-मोटी बातें ही सुनाता। जाँच के बाद कोई चमत्कारपूर्ण कथा।

यथा तम्बाकू के मशहूर व्यापारी को डेढ़ लाख रुपये का घाटा लगा। उसने सोचा कि इस जान को अब देह के पिंजड़े में बन्द करके रखना बेकार है। दोनों पैर में 'महिपा-दादा'। महिपा-दादा कहो या इकजिमा बात एक ही है। इसी इकजिमा के कारण डेढ़ लाख का घाटा। और इकजिमा को अंग्रेज लोग असाध्य मानते हैं। किसी ने मेरा नाम बता दिया।···जाकर देखिए, परसों से कीर्तन करवाने का जोगाड़ लगा रहा है। मिठाई बँटेगी। सिर्फ चार दिनों में साला इकजिमा, भूसी की तरह देह से झड़ गया। जाकर देख सकते हैं। ··

ऐसी कहानियों के प्रसंग में जग्गू, पटने के प्रसिद्ध डॉक्टर टी. एन. बनर्जी साहब का नाम दो-तीन बार अवश्य लेता—एक बार की बात है···।

पुरानी खाँसी से परेशान बूढ़ी की कुकुर-खाँसी, इस कहानी की प्रथम पंक्ति को सुनकर ही रुक जाती। जग्गू, अपने सफरी हुक्के पर चिलम रखकर कुछ देर तक गुड़गुड़ाता रहता। फिर—एक बार की बात है। परसा राज के मनिजर के दामाद का पेशाब अटक गया।···वैदजी से चार महीने की छुट्टी लेकर मैं भी परसा गया था। परसा में मेरा ससुराल है। ··मनिजर साहब के दामाद के पेशाब अटकने की बात तुरत गजट में छापी हो गयी। मनिजर की नौकरानी, रिश्ते में मेरी साली लगती थी। मैंने मनिजर की नौकरानी से कहा कि गजट-छापी से भला पेशाब होगा? जाओ कुल्थी का पानी पिलाओ। नौकरानी बोली मनिजरानी से, मनिजरानी बोली जाकर डॉक्टर से तो 'सिविल सरजंट' बोला कि नहीं, जब तक पटने से टैनबनर्जी साहेब डॉक्टर नहीं आते हैं, दवा क्या एक बूँद पानी भी नहीं चलेगा किसी का।···लो भाई, आने दो टैनबनर्जी साहेब को। हम भी दर्शन कर लेंगे। ···डॉक्टर हैं टैनबनर्जी! सौ डॉक्टर पर एक डॉक्टर, समझिए कि हौल इण्डिया से भी बाहर जिनका 'जस' फैला हुआ है! ऐसे डॉक्टर का दर्शन भी दुर्लभ है।···सो, हवाई जहाज गिनगिनाता हुआ उतरा परसा पोलो-मैदान में! हवाई जहाज से उतरे टैनबनर्जी साहेब।···हरदम हँसते रहते

हैं टैनवनर्जी डॉक्टर। क्या डॉक्टर है बाबा। मोटर से हवेली मे आये। रोगी की नाड़ी पर हाथ रख दिया। पेट को टटोलकर देखा और चिल्लाये—कुलुथ! जल्दी से कुलुथ का पानी पिलाओ। तुरत''।

सो, मनिजरानी तो पहले से ही पानी मे कुल्थी डालकर बैठी थी। हाँ, मनिजरानी इसके पहले मुझसे, पच्चीस साल पुराना सिरदर्द झड़वा चुकी थी। तुरत चम्मच से कुल्थी का पानी पिलाया।'''

जग्गू की ऐसी कहानियाँ प्रायः 'डबल-क्लाइमेक्स' वाली होती।

'''सो, पहला चम्मच ही पिया कि टोटा जो फूटा—तो फिर बिछावन, चादर, गजट-कागज-अखबार और कपडा-लत्ता—सब ज-ला-म-य?? लगा, कटिहार-टीशन की पानी की कलटेरी खुल गयी हि-हि-हि-हि!!

खाँसी से जरजर पोपली बूढ़ी के ओठो पर सलज्ज मुस्कुराहट खिल पड़ती। हँसी की फुलझडी छूटती जवान लडकियो के कण्ठ से। बच्चे हँसते-हँसते बेहाल!!

बूढी की खाँसी से परीशान, परिवार के लोग उस रात को गहरी नीद से सोते।

रोग को छुडाने के लिए, रोगियो के दुख-दर्द को दूर करने के लिए जग्गू अपने अनेक गुणो का प्रयोग करता—आवश्यकतानुसार। टोटका, तन्त्र-मन्त्र, झाड-फूँक, मुष्टियोग। किन्तु, प्रत्येक गुण के प्रयोग के पूर्व तत्सम्बन्धी कम-से-कम आध-दर्जन कहानियाँ वह जरूर सुना डालता!

कहानियाँ, रोग-परीक्षा, निदान, टोटके और मुष्टियोग की दो श्रेणियाँ थी। एक भद्र और दूसरी अभद्र।'''अभद्र रोगो मे भद्र टोटके से क्या हो? कहानियाँ वह रुचि को परखकर ही सुनाया करता। यों, प्रत्येक कहानी में 'ग्राम्य-रस' कुछ ज्यादा ही ढालता था, वह।

कमर-दर्द से पीडित रोगी रविवार की पहली भोर मे उठकर किसी ताड़ के पेड़ को अंकवार में भरकर आलिंगन-आदर करे। दर्द तुरत फुर्र-र र!'''शर्त है, कोई देखे नहो, कोई टोके नही।

गलफुल्ली (मम्स!) से ग्रसित व्यक्ति साहुड़ के पेड के पास बैठकर 'दियाधरी' से पहले, पुक्का फाड़कर रोये। बैलून-जैसे गाल तुरत 'चुपस' कर बटुआ-जैसा हो जायेगा।

कुछ टोटके कान में ही फुसफुसाकर बताये जा सकते है।···अभद्र रोग का कोई अभद्र टोटका!

पन्द्रह साल पहले, स्टेशन पर मलेरिया सेण्टर खुला।

सरकारी डॉक्टर-कम्पाउण्डरो के अलावा और भी कई डॉक्टर [हेमो और एलो] आकर गाँव मे बसे। फिर, प्रतिभावान 'अच्छर कट्टु' लडके भी थे कई, जो मिडिल पास-फेल करने के बाद घर बैठे डॉक्टरी पास कर—लाठी के हाथ डॉक्टरी चला रहे थे।···क्वैक!

जग्गू 'क्वैक' का अर्थ किसी जानकार से पूछकर जान चुका था।

इसलिए, जब सरकारी डॉक्टर और कम्पाउण्डरो ने आपस मे बातें करते समय जग्गू को 'क्वैक' कहा तो उसने तुरत विरोध किया था—नही हुजूर। गुरु की दया से जो कुछ मेरे पास है, वह गुरुमुख से ही मिला है—कुवैक नही कहिए—डॉक्टर बाबू!

इतने डॉक्टर और कम्पाउण्डरो के आगमन से जग्गू की 'प्रेक्टिस' मे कोई अन्तर नही आया। लोगो ने देखा, डॉक्टरो की घरवालियाँ भी अपने बच्चो की अथवा अपनी दवा जग्गू से ही करवाती है।

हाट के दिन, हाट के चौरस्ते पर चट्टी लगाकर, कपड़े की सैकड़ो छोटी-बडी रंगी-बदरंगी झोलियो को वह सजाता—प्रतीक्षा करते हुए लोग उसकी चट्टी के चारो ओर जमा हो जाते। देखते-देखते भीड बढ़ जाती।···किन्तु, हाट के भीड़-भडाके मे भी नाड़ी देखने मे जग्गू पसारी कभी नही गड़बड़ाया।

हाट में तुरत जाँच, तुरत नुस्खा!

हाट में उसकी कहानी-कला तो नहीं, शब्द-प्रयोग की एक अभिनव चातुरी काम करती, उसकी।···

कोई हाथ दिखला रहा है। दूसरा पथ्य के बारे में पूछ रहा है। तीसरा घूँघट के अन्दर से ही नकिया-नकियाकर धारा-प्रवाह कुछ सुनाती जा रही है। जग्गू सबकी सुन रहा है—गुन रहा है। कभी नही गड़बड़ाया है। सभी को सही दवा और वाजिब सलाह देता जा रहा है—पेट? गन्दा? एँ? ठीक है न? भूख? भूख मन्दा? है न? मुँह कड़वा और पेशाब कड़क? है न?···? काढा-कुटकी चिरैता भोर में। समझे? और, जीरा कालानून

मुकनी दही-घोल मे···चार आने की कुटकी-चिरैता। बढाइये हाथ !···

···बहिनजी ! हाँ—दिन-रात माथा भारी? है न? हर महीने बीमारी! एँ? है न? आँख के आगे उडे जुगनू—कान के पास हमेशा घुनघुन? है न? ···अशोक के बाकल का काढा, बकरी का दूध गाढा···यह तुतिया किसका है भाई—लीजिए नीला थोथा' 'अदरख के साथ काला मोथा! पुराना शहद, काली गय का गोत !!

गाँव पहुँचकर देखा, कुसुमलाल ही नही; जग्गू पंसारी की निन्दा करते समय हर आदमी रस-भरी बाते बोलने लगता है। हाथ के 'जस' और बाक के 'सत्त' को लोगो ने मानो अपनी आँखो से देखा हो—एक जोड़ी चिड़िया की तरह फुर्र से उड गयी।···अब क्या है जग्गू के पास?

सबमे अचरज की बात! रसिकलाल ही सारे इलाके मे रस-भरी कहानियाँ—अपने बाप की—सुनाता-फिरता है—रोज नयी कहानी!

रसिकलाल को देखकर मैं दंग रह गया। वह अपने को डॉक्टर रसिकलाल कहना-सुनना पसन्द करता है। पेटेण्ट दवाओं की एजेन्सी उसने ली है। साइनबोर्ड पर लिखा हुआ है—'हजारो रोग की एक दवा 'रामबिन्दु'—डॉक्टर रसिकलाल, मोकाम हल्दिया के पास भी मिलता है।'

कहानियाँ रसिकलाल भी सुनाता है। किन्तु, उसकी कहानी एकदम आधुनिक होती है। अंग्रेजी शब्दों से वह अपनी कहानी को बीच-बीच मे बघारता रहता है—स्टेशन मास्टर साहब की बडी लड़की रात मे सपने मे खराब 'ड्रीम' देखकर डर जाती। 'ड्रीम' देखती—स्टेशन का 'सिगल' कभी 'डौन' और कभी 'अप' हो जाता है। सूखकर काँटा हो गयी थी। स्टेशन मास्टर ने नही, बताया स्टेशन मास्टर की घरवाली ने। सो, एक ऐसा टोटका बता दिया कि फिर काहे को सपने में खराब-खराब ड्रीम देखेगी और काहे को साला सिगल फिर अप और डौन होगा!

कहानी सुननेवालो को जब और भी कुछ सुनना होता तो कोई 'लेकिन मुक्त बात' से उसको उकसा देते—लेकिन, जग्गू तो कहता है कि रसिक ढोढा-साँप का मन्तर भी नही जानता। झूठ-मूठ लोगो को ठगता-फिरता है।

रसिकलाल तब बार-बार सिगरेट सुलगाता और बाँटता है। धुआँ

फेंकता हुआ अपने बाप को एक भद्दी गाली देता है। फिर एक अश्लील कहानी अपने बाप की शुरू कर देता है—कल रात की बात क्या बतावें? ओसारे पर उलंग होकर…।

सभी कीर्ति-कथाओं को सुनने के बाद ऐसा लगा कि जग्गू अब पूरा पशु हो गया है। गाँववालों की बातों से यह भी मालूम हुआ कि कोई ऐसी व्यवस्था हो रही है—गुप्त रूप से—कि जग्गू को अपनी झोली-झण्डी लेकर इस गाँव से भागना पड़ेगा अब। …घिना दिया इस बूढ़े ने?

चालीस साल पहले आकर जड़ जमानेवाला जग्गू कहाँ जायेगा? अपना गाँव? जब इकलौता बेटा ही अपना नहीं हुआ तो गाँववाले तो उसे पहचानेंगे भी नहीं। चालीस साल पहले जिस गाँव को छोड़कर आया—वहाँ अब क्या धरा होगा?

मैं जग्गू से मिलना चाहता था। बच्चों के लिए एक बोतल 'हींग पाचक' बनवाकर शहर ले जाना है।

जग्गू की झोपड़ी के पास ही उसके लड़के की हवेली बन रही है। रसिकलाल ने नमस्कार करके स्वागत किया, "आइए!"

किन्तु, मैंने जान-बूझकर उससे पूछा, "तुम्हारे बाबूजी कहाँ हैं? मुझे जग्गू बैद से काम है।"

रसिकलाल अप्रतिभ हुआ। उसने झोपड़ी की ओर उँगली उठाकर कहा, "जाइए, अंग्रेजी बायस्कोप का खेला हो रहा होगा। देखिए…।"

रसिकलाल अपनी बात पर आप ही हँसा।

जग्गू की झोपड़ी मेरी जानी-पहचानी थी। दरवाजे पर ऐसा सन्नाटा कभी नहीं देखा। जहाँ हमेशा मेला लगा रहता था—वहाँ—??

जग्गू ने मेरी खाँसी सुनकर मुझे पहचाना।

दरवाजे पर पहुँचकर मैंने पुकारा, "लाल बाबू है क्या?" और अन्दर से जवाब मिला, 'आइए, आइए। अन्दर ही आ जाइए।'

जग्गू की पहाड़िन पर पहली नजर पड़ी—अन्दर आँगन में पैर रखते ही। जग्गू दहलीज में खाट पर बैठा हुआ था। पहाड़िन को देखकर ही समझ गया—कुसुमलाल 'तड़तड़ जवान' क्यों कहता है।

जग्गू ने कहानी शुरू की :

देखा, पुराना कथाकार मरा नहीं है। किस तरह उसके पुत्र ने नादानी की, कैसे जग्गू ने माफ किया ! फिर, गौना के बाद किस तरह बुरा व्यवहार करने लगे दोनो। यहाँ तक कि इस बुढौती में कलंक भी लगा दिया।—मेरे गुरु ने कहा था—'बेटा हो या स्त्री, जब तक 'गुण' रखने के काबिल नहीं हो जाये, उनके हाथों में कुछ नहीं देना।' सच कहा था गुरु ने !···सो, अभी दिया ही कहाँ था कुछ मैंने। कहिए भला, शीशी की दवा चलता है। ऊपर हैं भगवान ! सब देखते है। जो थोड़ा-बहुत हाथ मे है वह भी नहीं रहेगा।

मैंने टोक दिया—लेकिन, दवा-दारू और हाट-बाजार बन्द करके इस तरह दिन-रात आँगन मे बैठे रहने से तो 'गुण' आपके हाथ में भी नहीं रहेगा। लोग तरह-तरह की बात कर रहे हैं।···

जग्गू के चेहरे पर एक चमक फैल गयी ! उसके नथूने फड़के !

पहाड़िन खरल में कोई दवा कूट रही थी—ओसारे पर ! वह शुरू से ही भाव-शून्य दृष्टि से मेरी ओर देख लेती थी। इस बार उसने जग्गू की ओर देखा। जग्गू चुप था। पहाड़िन का दवा कूटना रुक गया। वह उठी और जग्गू के पास आकर पहाड़िन में ही बोली, "इस भले आदमी को क्या लेना है ? नहीं लेना-देना है कुछ···घर जाने को कहिए। यहाँ क्या है ? मेला है ?"

पहाड़िन अब जग्गू की गंजी खोपड़ी मे तेल लगाने लगी।

जग्गू बोला, "गाँववालों की बात पर आपने भी परतीत कर ली ? ·· आप बहुत दिनों के बाद गाँव आये है ! तो सुनिये !"

"मेरे हाथ का गुण मेरे मरने के बाद भी मेरे हाथ मे रहेगा। और उसके बाद भी मेरे खानदान मे—मेरी ही औलाद के हाथ में गुण रहेगा। मेरे बेटे का नाम हौल इण्डिया से बाहर···।"

मैंने कहा, "लेकिन रसिकलाल तो···।"

इस बार जग्गू तड़प उठा, "उसका नाम मत लीजिए बाबू साहेब ! वह मेरा बेटा नहीं। सचमुच मेरा बेटा नहीं।"

"तब आपने जो कहा कि···।"

"क्या कहा ?"

जग्गू आवेश मे आ गया, "रसिकललवा पहले अपनी कागवन्ध्या स्त्री

का तो इलाज करे ! बाबू साहेब मैं धरती पर तीन लकीर खींचकर कहता हूँ कि नाक रगड़कर धरती में मर जायेगा···वह, उसकी बीवी के कोख से चूहा भी नहीं निकलेगा।"

"देखिए, वह आखिर लड़का ही है, आपका ?"

"फिर वही बात ? वह मेरा बेटा नहीं। मेरा बेटा तो···?"

जग्गू ने तेल लगाती हुई पहाड़िन का आँचल उठाकर, हाथ से पेट छूकर दिखलाते हुए कहा, "मेरा बेटा यहाँ है। यहाँ ··?"

मैं गूंगा हो गया, अचानक ? पहाड़िन पूर्ववत् जग्गू के सिर में तेल लगाती रही। उसके चेहरे पर किसी तरह का परिवर्तन नहीं ! न लजाई, न गुस्साई !

"लोग कहते हैं कि जग्गू के हाथ में अब 'जस' नहीं ! देखेंगे, लोग देखेंगे ' मेरी इस कांछी को फारबिसगंज मिल के बदमाश मजदूरों ने लगातार चार साल तक अपने कब्जे में रखा। तरह-तरह की अंग्रेजी दवा खिलाकर इसकी बच्चादानी को बेकार बना दिया था।'' मेरे पास जब आयी तो, पहले मैंने सोचा कि रखेलिन की तरह रहेगी ! लेकिन, बाबू साहेब—यह औरत, औरत नहीं—साक्षात सती है। सो, जब रसिकलाल ने अपनी नीयत बिगाड़ी —मैंने सोचा, अब नहीं···!"

मैंने लक्ष्य किया जग्गू का स्वास्थ्य पहले से अच्छा है।

"बाबू साहेब, पाँच महीने तक सिर्फ इसका कोख 'सुद्द' किया मैंने। आप तो जानते ही हैं कि मैं सब रोगों की दवा चलाता था लेकिन कोख और कोखदानी की गड़बड़ीवाले केस को साफ जवाब दे देता था। क्योंकि गुरु का कहना था कि बच्चा देना विधाता के हाथ में है। जो बैद विधाता के इस काम में टाँग अड़ाता है—विधाता उससे एक दिन पूछते हैं ? सो, जब परेम हो गया तो फिर क्या जात, क्या पात।'' बाबू साहेब सालों ने इसकी दूह-दूहकर देह ढीला कर दिया था। सो कोख सुद्ध करने के बाद इसकी ढहर-ढोली देह का इलाज किया।'' बोलिये तो कांछी की क्या उमर होगी ? देह का गढ़न ऐसी देख रहे हैं न सब दवा खाने के बाद हुआ है···।"

जग्गू रुका। मैं घबराया। पेट दिखलाने के बाद अब कहीं···?

मैं बोला, "हींग पाचक तैयार है !"

"बाबू साहेब, पाचक-वाचक नही। आजकल मैं वह सब मामूली दवा बनाने में बेकार समय बर्बाद नही करता।" सो, जब काछी का कोख शुद्ध हुआ—एकदम पियोर हो गया तब मैने गुरु का नाम लेकर काछी को घर मे बैठा लिया। सिर्फ हाथ के 'जस' और वाक के 'सत्त' को अपने खानदान मे रखने के लिए !···आप तो जानते ही हैं कि बिजू आम से बढकर होता कलम आम ! मगर, कलम लगाना बहुत कठिन काम है।···

मैं उठना चाहता था। क्योंकि, जगू की पहाडिन उसकी खल्वाट खोपड़ी पर तेल-मालिश करने के बाद—कमर की ओर हाथ बढा रही थी।··· झोलंगी-खटिया रह-रहकर चरमरा उठती थी और पहाडिन हर बार 'अइयो' कहकर जगू से कहती, 'पुग्यो ?'

"सो, बाबू साहेब ! जब मैंने सबकुछ शुद्ध करके काछी को घर में बैठा लिया, तब···तब उस हरामजादे ने क्या किया, जानते है ?···मैं फारबिसगज गया था और साले ने फिर 'असुद्ध' कर दिया।·· जी हाँ, रसिकलाल ने ! मै घर आया तो काछी बोली—फिर असुद्ध···!

अब मै उठ खडा हुआ।···मैं सिर से पैर तक अशुद्ध होता जा रहा था।

"बाबू साहेब सुनते जाइये।···काछी के पेट मे जो बच्चा है, वह आपके गाँव का, समाज का, हौल इण्डिया का नाम रखेगा।···इसलिए, काछी ने जिस दिन सुबह-सुबह उठकर कै किया—उसी दिन से मैं दिन-रात घर मे रहता हूँ ! कही नही जाता। कैसे जाऊँ ? छै महीने तक 'बबुआ' पर किसी की छाया नही पडने दूँगा। अभी तो दो महीने का ही है। क्यो काछी, आज सिमुलाकन्द खायी है, तो? तुमको कुछ खयाल नही कि बेचारा बबुआ···?"

जगू ने फिर काछी के पेट पर पड़ा हुआ आँचल उठाया, "देखते हैं बाबू साहेब, इसको कहते है हाथ का जस ! रसिकललवा की बीवी कहाँ पायेगी ?"

मैं आँगन से बाहर निकल आया।

[हाथ का जस / 1962]

पुरानी याद

किसी बात या घटना की याद क्यों और कैसे आती है, इसका शास्त्रीय विवेचन मनोविज्ञान के विशेषज्ञों का विषय है। हम साधारणजन तो इतना ही कह सकते है कि पुरानी याद उस सोने की तरह है, जिसमें मिली हुई खाद समय की आँच में तप-गलकर स्वयं ही अलग-विलग हो जाती है।

पिछले साल दूर देहात में, अपने एक निकट सम्बन्धी के घर पर दो-चार दिनों के लिए ठहरना पड़ा। साथ में जो एकमात्र मासिक-पत्रिका थी, उसकी सभी पठनीय और अपाठ्य सामग्रियों को एक ही दिन में दो बार पढ़ चुका था। विज्ञापनों से दूसरे दिन की दोपहरी किसी तरह कटी। किन्तु, तीसरे दिन को काटने के लिए मेरे पास कुछ नहीं था और सुबह से शाम तक मैं खुद कटता रहा। मेरी बेचैनी का कारण जानकर मेरे सम्बन्धी ने दुख प्रकट करते हुए कहा—'घर में तो पोथी-पत्तर के नाम पर बस एक रामायणजी है। रामायण पढ़ियेगा?'

अन्दर हवेली से सीकी की एक पुरानी पिटारी लेकर आये। पिटारी से रामायणजी के साथ और भी कई किताबें निकलीं। एक—उस जमाने की एक मशहूर पेटेण्ट दवा की कम्पनी का सचित्र पचाङ्ग (सूची-पत्र सहित) था। दूसरी थी···सन् उन्नीस सौ अट्ठाइस में मिडिल में पढ़ाई जानेवाली किताब-साहित्य पाठ। दृष्टि पड़ते ही मेरा कलेजा धड़क उठा। पृष्ठ उलट-कर देखा···अस्य पुस्तकाधिकारी···??

अपने हाथ की पुरानी लिखावट को पहचानने मे देर नही लगी। किताब ही मेरी थी, जो न जाने कब और कैसे यहाँ आकर सुरक्षित पडी हुई थी। रामायणजी के बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड के अधिकाश पृष्ठ दीमक-युक्त हो चुके थे। किन्तु, मेरी किताब की प्रत्येक पक्ति में मेरा बालकाण्ड छपा हुआ था—मानो। सचित्र साहित्य-पाठ के कई पाठो के आस-पास हाशिये पर अग्रेजी मे 'इम्प.' अर्थात् इम्पोर्टेण्ट, 'वी. इम्प.' अर्थात् वेरी इम्पोर्टेण्ट, और कही-कही वेरी-वेरी इम्पोर्टेण्ट आदि लाल-सतर्क वाणियाँ इतने दिनो के बाद भी मुझे सतर्क कर रही थी···

यत्र-तत्र, लाल पेन्सिल से पंक्तियाँ रेखाकित थी और किसी तस्वीर की मूँछ 'रिटच' करके सँवारी गयी थी। किसी सन्त कवि को चश्मा पहना दिया गया था।···जयद्रथ-वध ···'उस काल पश्चिम ओर रवि की रह गयी बस लालिमा, होने लगी कुछ-कुछ प्रकट-सी यामिनी की कालिमा'···डोमन खतबे ने परीक्षा में इन पंक्तियो का अर्थ 'सन्दर्भ सहित' लिखा था—रवि की लाल-माँ भी रह गयी और जामिनी की काली-माँ तब सामने आ गयी ···बचपन की हँसी फिर लौट आयी मेरे ओठो पर।···

एक पृष्ठ पर डाल्हिया फूल की कई बदरग पंखुडियाँ चिपकी पडी मिली। तितली के पंखो-जैसी। और उन्ही पंखो के सहारे मै तीस-बत्तीस साल पहले की दुनिया मे जा पहुँचा।···

स्कूल के हेडमास्टर साहब के कमरे के सामने, बाग मे एक नया फूल खिला है···अंग्रेजी फूल, डाल्हिया! हम सभी महीनो से इस फूल के खिलने की प्रतीक्षा कर रहे थे। जिस दिन वह खिला, हेडमास्टर साहब की बाछे खिल गयी। इतने प्रफुल्लित हुए कि एक घण्टा पहले ही छुट्टी की घण्टी बजवा दी।·· हेडमास्टर साहब ने वी. पी से उस फूल का कन्द (बल्व) मँगवाकर अपने हाथो रोपा-सीचा था। छुट्टी की घण्टी बजी। ड्रिल पेरियड और ड्रिल-मास्टर साहब से त्राण पाकर हम प्रसन्न हुए—जै हो डाल्हिया फूल की !!

किन्तु हम स्कूल के आहाते से निकलकर एक फर्लांग भी नही जा पाये थे कि पीछे से स्कूल के चपरासी की पुकार सुनायी पड़ी। उधर स्कूल की घण्टी फिर जोर-जोर से बजने लगी। टन-टनाग, टन-टनाग !!···एक, दो,

मैंने तोड़ा है।…हेडमास्टर साहब के चपरासी ने बताया था एक दिन कि इसका पहला फूल जिसके पास हो, वह किसी 'इम्तहान' में फेल कर नही सकता। खासकर अंग्रेजी मे तो कभी नही। क्योंकि फूल अंग्रेजी है। और, तुम जानते ही हो कि मैं सभी सबजेक्ट मे कैसा भुसकोल हूँ।'

इतना कहने के बाद उसने अपने अगोछे में लिपटे फूल को निकाला… बासी, मुरझायी और झड़ी पपडियाँ, पंखुड़ियाँ !!

फिर उसने इस फूल की कुछ पखुड़ियाँ मुझे देकर इसके व्यवहार की विधि भी बतलायी—'जिस विषय मे ज्यादा नम्बर पाने की इच्छा हो, उस विषय की किताब मे इन पंखुड़ियो को दबाकर रख दो। फिर, काम सोना !'

चोट, दर्द और बुखार के बाद असल आसामी को बा-माल देखकर मै तनिक उत्तेजित हुआ, किन्तु ! किन्तु…!

किन्तु, पढने मे बोदा होने के बावजूद उससे मेरी दोस्ती थी। वह फुट-बॉल का अच्छा खिलाडी था। हमारे बालचर दल का मुस्तण्ड साथी।

इसके अलावा बार-बार माफी माँगते समय वह अपना मुँह सामने कर देता था। कनपटी टेढ़ी करके कहता—'तुमको जितनी मार लगी है, उससे ज्यादा मुझे मार लो।'

मैंने फूल की पंखुडियो को साहित्य-पाठ के पृष्ठो मे दबाकर रख दिया और फिर कभी उस किताब को स्कूल नही ले गया।

सबसे अचरज की बात जो याद आ रही है वह यह कि परीक्षा-फल निकलने के बाद मेरा वह फूलचोर-मित्र सभी विषयो मे फेल होकर भी मुझसे सोत्साह कहने आया—'देखी न तुमने इस फूल की महिमा ? जिस किताब मे दबाकर रखा उसमे तो सबसे ज्यादा नम्बर तुम्ही को आया न ?'

खुद अपने बारे में उसने स्वीकार किया, चूँकि फूल हेडमास्टर साहब का था और सबसे बड़े गुरु का दिल दुखाकर पास करना खेल नही।…

मेरे उस मित्र ने आठ वर्ष पूर्व 'बिहार एलेवन' मे 'सेलेक्ट' होकर—कलकत्ते के मैदान मे चार दिनो तक कमाल दिखलाया था। अखबारों मे उसकी तस्वीर छपी थी…।

साहित्य-पाठ की उन पखुड़ियो को बटोर कर मनी-बैग मे रख लिया।

···हमने जिसे प्यार किया था, उसको एक दिन राज्य-भर के क्रीडा-प्रेमियों ने प्यार किया—उसके नाम को और भी संक्षिप्त करके एक मीठा-सा नाम दिया।···

अट्ठाइस-उन्तीस साल के बाद, अपनी पढ़ी हुई, कोर्स की किताब को फिर से देख पाना ही अपने मे एक बड़ी बात है। तिस पर, उसके पन्नों के बीच पुरानी याद की कुछ पखुडियाँ दबी-चिपकी पडी हो···?

[ज्ञानोदय / मार्च 1962]

एक लोकगीत के विद्यापति !

(भूमिका !...

महाकवि विद्यापति पर 'खोज' करते समय मैंने अनुभव किया, एक अध्याय का शीर्षक रखना पड़ेगा—'खेतिहर-मजदूरों और गाड़ीवानों के कवि विद्यापति !' क्योंकि, पूर्णिया-सहरसा के इलाके में आज भी विद्यापति की पदावली गा-गाकर—भाव दिखलाकर नाचनेवालों की मण्डली पायी जाती है। इन मण्डलियों के नायक—भैंसवार, चरवाहे और गाड़ी हाँकनेवाले ही होते हैं, प्रायः। मैथिल पण्डितों से पूछा, यह कैसे हुआ ? बोले, आप किस फेर में पड़े हैं ? इन्हीं मूर्खों के कारण आज विद्यापति की दुर्दशा हो रही है। ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे जिसके जी में जब आया—विद्यापति के नाम पर 'चार पदावली' जोड़ दी।... आप गुमराह हो गये हैं !...

मिथिला के पण्डितों की वर्जना-वाणियों को अनसुनी करके मैंने सहर्ष सहरसा (या सहर्षा ?)—यात्रा की तैयारी शुरू कर दी।

...कनचीरा गाँव एक ऐसा गाँव है, जिस पर दो-दो जिला के जिला अधिकारियों का शासन चलता है। आधा गाँव

को गा-गाकर नाचना शुरू किया। जनकदास की पलानी में पुआल पर लेटा रहा दिन-भर—उसको दया नहीं आयी। उसकी वेवा जवान बेटी ने मेरी ओर से वकालत की—तब भी वह नही पसीजा—अपने खानदान की 'हँसाई' की बात भला कौन 'गजट' मे 'छापी' करवाना चाहेगा ?

बूढा जनकदास, बैलो को खोलकर चराने चला गया।

मैं उसकी पलानी मे पडा रहा और उसके बाद ही एक कहानी सुनी या सपना देखा अथवा—'भरम' मे पड गया—नही कह सकता !)

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी का चाँद, एक घड़ी साँझ को जवर्दस्ती पनघट पर रोक रहा है, गाँव की लडकियों को। कोसी की दुबली-पतली धारा मे जलकेलि कर रही है, वे। इसी समय गाँव के दक्षिण छोर से एक पुकार सुनायी पड़ी—कोइली बेटी-ई-ई-ई !!

कोइली को होश हुआ—बप्पा बुला रहे हैं। जरूर कोई बात है। बप्पा कभी इस तरह व्यग्र होकर नही पुकारते अपनी मातृहीना बच्ची को !

वह, कमर पर गगरी रखकर चली। सखियों ने कहा, "जा-जा। तेरा सम्बन्ध लेकर कही का नाई आया होगा।"

कोइली ऐंठकर बोली, "कतऽ चतुरान मरि-मरि जावत···!"

"बेटी ! अतिथि आये है, एक। उच्च वर्ण के अतिथि !"

कोइली तुनककर बोली, "उच्च वर्ण के है तो हम नीच-जन के घर क्यो आये हैं ? उन्हे ब्राह्मण टोली का रास्ता दिखला दीजिए।"

"नही बेटी, गाँव मे किसी ने रात-भर के लिए भी जगह नही दी। हर दरवाजे से भगा दिया, गृहपतियो ने। बेचारा ज्वर से बेकल है।"

बाँस की 'फरकी' पर गीली साड़ी पसारती हुई कोइली बोली, "बप्पा! तुम दिन-दिन बच्चा होते जा रहे हो। जरा सोचो—जिस आदमी पर गाँव के लोगो ने 'परतीत' नही किया उसको तुमने अपनी मड़ैया मे जगह दे दी। ···दिन काल कैसा बीत रहा है सो नही देखते। अब तो भला का बदला बुरा भोगना पड़ता है।···"

बाहर, मड़ैया मे लेटा हुआ अतिथि ज्वर मे बड़बड़ाने लगा—समुचित औषदे ने रहय बेयाधि ! हे हरि, हे हरि···!!

कोइली चौंकी। अतिथि का प्रलाप सुनकर उसकी देह सिहर उठी, "इतनी मधुर वाणी!"

कोइली ने झांककर देखा, एक दिव्य पुरुष मड़ैया मे लेटा हुआ है, "कुंचित-केश, गौर वर्ण।···पैर मे छाले पड़ गये हैं?···किन्तु, किन्तु··· बप्पा! इस अतिथि को तो तुम जल भी नही पिला सकते! हम अछूत हैं और यह निश्चय ही ब्राह्मण-सन्तान है।···क्या करोगे?"

बाप ने कहा, "मेरा मृदग ले आओ! ··घुनागि धिन्ना! धड़िग-धड़िगा —गणपति गगा!!"

पाँच दिनो तक कोइली की मड़ैया मे उसका अतिथि ज्वर से बेसुध पड़ा रहा। जिस दिन स्वस्थ हुआ—चारों ओर देखकर तनिक कुण्ठित हुआ—फिर अपनी राह लग गया।

विद्यापति कवि राजा शिवसिंह से रूठकर न जाने कहाँ चले गये है। चारो ओर ढिंढोरा पीट दिया गया है—राजा शिवसिंह और रानी लखिमा ठकुरानी 'खटपासी' लेकर पड़ी हैं। जब तक विद्यापति लौटकर नही आते—वे अन्न-जल स्पर्श भी नही करेंगे!!

चारो ओर दूत दौड़े! ··खोजो, खोजो। कहाँ है कवि विद्यापति?

राजा 'लवेजान' है। रानी अन्तिम साँस ले रही है—विद्यापति कहाँ? कहाँ हो कवि?

पूरब से खबर आयी—विद्यापति इधर कही नही!

पश्चिम से लोग खोजकर आये—उधर नही।

दक्षिण, समुद्रतट तक दूत ढूँढ आया—निराश होकर।

उत्तर राज नेपाल से सवाद मिला—विद्यापति यहाँ है।

तुरत, राज्य-मन्त्री विदा हुए।

नेपाल-नरेश ने एक दिन और बिलमाने की चेष्टा की। मन्त्री बोले—राजा-रानी के प्राण ओष्ठगत है। हा-विद्यापति-हा-विद्यापति रटकर जान दे देंगे—वे!

रूठे हुए विद्यापति ने स्वय आतुरता प्रकट की और कवि को लेकर राजा शिवसिंह के मन्त्री लौटे—सदल-बल।

एक गाँव के पास आकर कवि ने कहा, "यहाँ पालकी रोको!"

"क्या है महाराज?"

"यहाँ" यहाँ"'इस गाँव मे मेरा कुछ खो गया है।"

"क्या खो गया है?"

"हाँ, इसी गाँव मे। क्या खो गया है सो नही कह सकता। लेकिन कुछ अवश्य खोया है, मेरा इस गाँव में! पता लगाओ।"

सिपाहियों ने मन्त्रीजी से कहा। मन्त्री ने कवि से पूछा, "महाराज! कब खोया है यह जाने बिना आखिर किस चीज का पता लगावे।"

कवि बोले, "मैं जब आ रहा था'''इसी गाँव में आकर साँझ हुई थी। गाँव में किसी ने मुझे टिकने नही दिया। सभी ने दुरदुरा दिया। तब गाँव से बाहर एक सुन्दर मड़ैया'''रक्तचम्पा के दो पेड़ है, लिपे-पुते दो-तीन मिट्टी के घर है। घर का मालिक एक बूढा है उसकी जवान, विधवा बेटी''।"

इतनी लम्बी हुलिया के बाद भला मुजरिम छिपा रहे?

तुरत, मड़ैया को घेर लिया सिपाहियों ने। बूढ़ा, बैल खोलकर चराने के लिए जा रहा था। सिपाहियों ने उसे गिरफ्तार किया, "बीमार आदमी को खूब लूटा तुम लोगो ने।"

"लूटा? किसको? हरि-हरि!"

"चोप साले! तुम्हारी बेटी कहाँ है?"

कोइली उस समय कोसी के घाट पर सखियो के साथ गा रही थी—'कमलनयन मनमोहन रे कहि गैल अनेके'''।'

बाप ने कातर स्वर में पुकारा, "बेटी! राजा के सिपाही-ई-ई!!"

गाँव के बाहर ही कोइली को सारी बात मालूम हो चुकी थी। सखियों ने ताना मारा, "जा-जा तेरा कमलनयन मनमोहन आया है फिर! घुँघराले बालोवाला, गीत जोड़नेवाला!!"

कोइली नही, नागिन फुफकारती हुई आयी, "मैंने कहा था न, बप्पा!

उस दिन तुमने नही सुना। अब भोगी भलाई का बदला !··"

हवलदार चिल्लाया, "जल्दी निकालो, चोरी का माला !"

मन्त्री बोले, "समय बर्वाद मत करो !"

कोइली बोली, "लेकिन, निकालूँ क्या ? कहाँ है आपके राजकवि ! कहिए महाराज ?"

कोइली को देखते ही महाकवि मूक हो गये !

कोइली हँसी, "क्या खोया है आपका ?"

"पता नही। लेकिन कुछ खोया है मेरा अवश्य !"

कोइली बोली, "मै बताती हूँ। महाराज जब हमारी मड़ैया मे अचेत पड़े थे तब बेहोशी मे पदावली बार-बार दुहराते थे।"

कवि बोले, "हाँ, हाँ मेरी पदावली···ठीक, ठीक।"

मन्त्री चिल्लाये, "समय नही है। जल्दी निकालो।"

हवलदार ने कहा, "कहाँ है पदावली ? चोर···!"

कोइली के नथुने फड़के, "चोर ? नहीं, हमने चोरी नही की। ज्वर से बेकल कवि के कण्ठ से जो पदावली निकली उन्हे हमने चुराया नही—रख अवश्य लिया—सुरक्षित।"

"कहाँ है पदावली ?"

कोइली बोली, "बप्पा ! निकालो मृदंग।"

कोइली अपने पैरो मे घुँघरू बाँधती हुई बोली, "जानते हैं दिनमणि ठाकुर—हमने इनकी पदावली चोरी नही की।···हमने इन्हे अपने हाथ का जल तक नही पिलाया—एक घूँट, इन्हे स्पर्श नही किया।···रागिनी को बप्पा बुलाते थे, रोज। रागिनी ही इनकी सेवा करती थी और, पदावली ? वह तो बप्पा के मृदग और मेरे घुँघरू में सुरक्षित है !"

मन्त्री बोले, "देर हो रही है। शीघ्र निकालो।"

कोइली बोली, "ठीक है। पालकी उठाइए। हम राह चलते-चलते महाकवि की थाती लौटा देंगे।"

"राह चलते ?"

"हाँ। बप्पा, दो मृदग पर हाथ !"

रुकी हुई पालकी उठी।

पालकी के अगल-बगल मे कोइली और कोइली का बूढ़ा बाप !···बूढ़ा मृदंग बजाता—पदावली की पंक्तियाँ मुखरित होती और कोइली के घूँघरू उन पदों को सुर देते ।

महाकवि अपनी भूली हुई पदावली की पक्तियाँ दुहराने लगे ।

दस कोस तक कोइली, राह के किनारे दौड-दौडकर नाचती रही। उसका बूढा बाप मृदग बजाता रहा ।

पालकी के अगल-बगल दौड़ती-नाचती कोइली एक जगह 'झमा' कर गिर पड़ी । मृदग का ताल टूट गया । डोली रुकी । सभी रुके ।···कोइली के पैर, लहुलूहान हैं !

कोइली ने पानी माँगा !

किन्तु बूढा बाप मृदंग बजा ही रहा था । उसकी उँगलियाँ अब भी नाच रही थी—मृदंग की सूखी चमडी पर ।

महाकवि को हठात् ज्ञान हुआ । पालकी से कूदकर उतरे और नदी की ओर दौड़े ।···

महाकवि के हाथ से चुल्लू-भर पानी पीकर कोइली ने आँखें खोली, "महाराज ! अब हमारे पास आपका कुछ नही ।"

कोइली ने आँखें मूँद ली ।

कवि ने पुकारकर कहा, "देवी ! मुझे क्षमा करती जाओ । ये पदावली मेरी नही, तुम्हारी है । तुम्हारी ही···!!"

जनकदास ने स्वीकार किया—पहले इस नाच मे 'राधा' बनती थी—मूलगैने की बड़ी बेटी ही । राधा बनती थी, पदावली गाती थी और पैर में घुँघरू बांधकर नाचती थी ।

[और, विद्यापति-नाच की पदावली स्वय विद्यापति ने उसके परिवार को दी थी—इस बात की भी उसने पुष्टि की । किन्तु उसने बार-बार अनुनय किया, यह बात किसी 'गजट' में छापी हो तो उसको पैसा जरूर मिले—इसका मैं खयाल रखूं ।]

[ज्योत्स्ना / मई 1962]

एक श्रावणी दोपहरी की धूप

शादी के बाद फिर 'मेस' में कौन रहता है। किन्तु, पंकज ने मेस के साथ अपने 'मेस-मित्रों' को भी छोड़ दिया।···दुनिया-भर के लफ़गों का अड्डा !

इतना ही नहीं, पिछले साल तक उसने बहुत बार निश्चय किया था—यदि छोटे साहब की भद्दी दिल्लगी बन्द नहीं हुई तो वह 'मेरी एण्ड मेरी' कम्पनी की नौकरी भी छोड़ देगा। एक मिनट भी देरी से पहुँचने पर अभद्र छोटे साहब को मौका मिल जाता—क्यों दास ? 'मॉर्निंग-शो' में जाना हुआ था ?

इसके बाद सहकर्मियों की दबी हुई विषैली हँसी !

एक रेलवे-रसीद की गड़बड़ी पर छोटे साहब ने कहा था—गलती माने ? यदि तुम्हारे सिनेमा के टिकट के नम्बरों में ऐसी ही गलती हो जायें, तब !·· माल कहीं और 'आर-आर' कहीं ?

सिनेमा ? असल में सिनेमा-हॉल से ही पूर्वराग-पर्व शुरू हुआ था—पंकज-झरना के प्रेम का। झरना अपनी माँ और बहनों के साथ आयी थी। पंकज ने, प्रथम-परिचय के दिन दस पैकेट टनटन-भाजा के खरीदे थे। छोटे साहब को उसके सहकर्मियों ने टनटन-भाजा की भी बात बता दी थी। इसलिए, छोटे साहब कॉलिंग-बेल को 'टनटन-बाजा' कहने लगे।

पंकज ने ठीक ही समझा था, शादी के बाद सभी उससे ईर्ष्या करने लगे थे। और, छोटे साहब की मोटी-बीवी को पंकज ने देखा था। वैसी बेडौल-

औरत का स्वामी और कैसी बातें करेगा, भला ? कई बार पंकज के जी में हुआ था, फाइल पटककर साफ-साफ कह दे—मुझे आप सिनेमा का 'गेट-कीपर' कहते है ? जनाब, आप 'गोल-कीपर' हैं।

किन्तु, बेकारी का जिसे कड़वा अनुभव हो, वह लगी हुई नौकरी को क्षणिक आवेश में आकर नहीं ठुकरा सकता। उसने सोच-विचारकर देखा था—आदमी को सहिष्णु होना चाहिए।···क्यों न वह अपना उपनाम 'सहिष्णु' रख ले। नाम का कुछ प्रभाव, स्वभाव पर निश्चय ही पड़ता होगा।

झरना ने भी यही कहा था, "पंकज नाम का प्रभाव तुम्हारे तन-मन पर ऐसा पड़ा है कि···!"

वक्तव्य अधूरा छोड़कर झरना ने पंकज के कन्धे पर अपना सिर रख दिया था, "क्या सभी 'लव मैरेज' करनेवालों के नाम ऐसे ही सुन्दर होते है ?"

"छोड़ो भी, नाम में क्या रखा हुआ है।"

अपने दफ्तर में अकेला पंकज ही है, जिसने इस प्रेमहीन-संसार मे आकर 'लव-मैरेज' किया है। उसकी स्त्री झरना अपूर्व सुन्दरी है। सितार बजाती थी, गीत गाती थी। शादी के बाद फिर कौन लड़की सितार बजाती है और गीत गाती है।

शादी के पहले, मेस मे कई दिनो तक 'प्रेम-परिणय' पर बेकारकी बहस चली थी। अवधेश की बात रह-रहकर आज भी याद आती है, पंकज को—लव-मैरेज करनेवालो को यदि मौका मिले, तो सारा जीवन 'लव' और 'मैरेज' करने मे ही गुजार दें।

तो, अवधेश के कहने का अर्थ हुआ, यदि झरना को शादी के बाद भी मौका मिले तो वह किसी को 'लव' करना शुरू कर देगी ? असम्भव !

मेस के सभी मित्र उससे जलते थे। एक साथ बैठकर किसी तालाब में 'बन्सी' से मछली फँसानेवालों के बीच, किसी साथी को बड़ी मछली मिल जाय तो ऐसा ही होता है।

विवाह के पहले पंकज को भी सन्देह था कि इस आर्यावर्त्त में अब सती-साध्वी नारी जन्म ही नहीं लेती। सो, भ्रम दूर हुआ—शादी के बाद। सीता

और माविली के साथ-साथ झरना का नाम स्वयं ही निकल पडता, पंकज के मुंह से।

इसी बात पर जगन से उसकी लड़ाई हो गयी थी और पकज को मेस छोड़ने का एक बहाना मिल गया था। जगन नीच है। नीच आदमी और कैसे बात करेगा भला ! मुंह बिदकाकर बोला था, जी हाँ साहब। सभी अपनी स्त्री को सीता-सावित्री ही समझते हैं। दुनिया के आश्चर्यों मे, एक महान आश्चर्य की बात यह भी है।"

जगन ने इसी सिलसिले में मुहल्ला-मुहर्रमवाग के किसी रमणीमोहन का नाम लिया था, "मुहर्रमवाग की कौन ऐसी कुमारी लड़की है जो रमणी-मोहन की गाडी पर चढकर मनेर-डाकबंगलो मे पिकनिक करने नही गयी होगी। लडकियाँ उसे 'गाडीवाला दादा' कहती हैं।

पकज ने उसी रात को, जरा घुमा-फिराकर 'गाडीवाला दादा' के विषय मे पूछ लिया था, "यह 'गाडीवाला दादा' कौन है तुम्हारे मुहल्ले में ?"

झरना का चेहरा इस नाम को सुनकर जरा उतर गया था। पकज के दिल की धड़कन तेज हो गयी थी। झरना ने सप्रतिभ होकर स्वीकार किया था, "हाँ, गाड़ीवाला दादा है। सुना है, बहुत 'लूज कैरेक्टर' है उनका। डोरे तो उसने मुझ पर भी डाले थे, जरूर। मगर, क्या मजाल जो कभी मुँह से कुछ बोले !

पंकज के गालों का ताप अचानक तेज हो गया था। बहुत देर तक झरना को बाहु-बन्धन मे बाँधकर, सिर्फ एक ही बात बार-बार दुहराता रहा, "तुम सती हो, तुम सती हो !"

मेस छोडने के बाद, पंकज दो महीने तक ससुराल में ही रहा। यों, झरना उसे रोज याद दिलाती—घर-वर का पता लगा कहो ?

पंकज को यह बात बड़ी भली लगती—झरना को अपने पति का अपने मैके में अधिक दिन रहना पसन्द नही। झरना की माँ रोज यह कहना नहीं भूलती कि पड़ोस के लोग पंकज को 'घरजमाई' समझते हैं।

झरना को माँ की बात से दुःख हुआ था। उस दिन जरा रुखाई से वह बोली थी, "यदि घर नही मिले तो आज फिर यहाँ लौटकर मत आना। मैं

सबकुछ सह सकती हूँ, किन्तु पति का अपमान ···"

पंकज ने झरना की पीठ पर हौले-हौले हाथ फेरकर शान्त किया था, "आज जैसे भी हो, जहाँ भी मिले घर ठीक करके ही लौटूंगा।"

"घर क्यों नहीं मिलेगा ? 'घरनी' होनी चाहिए साथ मे।"

पकज को घर मिल गया। झरना को लेकर अपना घर-संसार बसाने के लिए मखनियाकुआँ की कुकरगली मे आया तो, झरना ने कहा, "शहर में घर लेते समय मुहल्ले का भी ख्याल रखना चाहिए।"

झरना ने गली मे पैर रखते ही नाक-भौं सिकोड़कर कहा था, "भले लोगो की गली नही यह।"

मखनियाकुआँ मुहल्ले को दोष नही देता है, पकज। किन्तु, कुकुरगली में वे एक महीना से अधिक नही रह सके। घर के सामने का हलवाई बडा भारी असभ्य निकला। झरना ने बताया कि दोपहर को वह अपने दोनो जघो को उघारकर खिडकी के सामने बैठता है और रह-रहकर खिड़की की ओर देख-कर किसी मिठाई का नाम लेकर बेवजह पुकारता है—रसगुल्ला है—रसगुल्ला !!

हलवाई की देखा-देखी फलवाले का आवारा लडका हाथ मे सन्तरा लेकर चिल्लाता रहता है—चार आने जोडा, जोडमजोड़ा—मीठा कँवला!!

झरना ने बताया कि इस गली की औरतें भी वैसी ही हैं।

मखनियाकुआँ से कुनकुर्नासिग लेन; कुनकुर्नासिघ लेन से बिहारी-सावगली और अन्त मे पिछले साल नालारोड पर घर बदलकर आ बसा है पकज। झरना को वह इलाका भी पसन्द नही। किन्तु, पकज ने फिर घर की समस्या पर, झरना के कुनमुनाने के बावजूद कभी ध्यान नहीं दिया···मुहल्ला अच्छा हो, पड़ोसी अच्छे हो, गली के कुत्ते रात मे शोर न मचायें, ऐसा घर कहाँ मिलेगा शहर मे ? झरना कुछ नही सोचती ?

सिर्फ घर की समस्या पर ही नही—इधर कुछ दिनों से पंकज ने झरना द्वारा उठायी गयी सभी समस्याओ को टालना शुरू किया है।

आज दफ्तर आने के पहले जब झरना ने ग्वाले के देर से आने की शिकायत की तो पंकज तनिक चिढ़ गया—बडे-बड़े अफसरो के घर मे एकाध

दिन देर-सवेर से दूध पहुँचता है।

पति की रुखाई को परखकर झरना चुप रही।

आफिस आने के पहले, मुँह में पान का बीडा डालने के बाद, पंकज अपनी पत्नी को हल्के ओठों से चूमता आया है ! अब यह क्रिया यन्त्रवत् होती है। इधर कई महीने से पंकज सोच रहा है, झरना को किसी दन्त-विशेषज्ञ के पास ले जायेगा। पायरिया का शिकार हो गयी है, निश्चय ही।

आज झरना लजाकर पूछ रही थी, "इस बार सरकारी फार्म का दूधिया भुट्टा नही आया है बाजार में ?"

"ध्यान नहीं दिया है। आज देखूँगा। मिलेगा तो···"

"नहीं-नहीं। मैंने यों ही पूछा।"

पति के जाने के बाद झरना, कुछ क्षण खड़ी देखती रही। टिफिन की झोली से 'खट-खट' आवाज क्यों आती है ? डब्बा खुला हुआ तो नहीं रह गया ?

वह एक बार फिर नहाने के घर में घुसी। देह धोकर बाहर आयी। सिन्दूर पहनते समय आइने में अपने चेहरे को ध्यानपूर्वक देखा। उँगली से जरा-सा स्नो छूकर गाल पर मल लिया। छाती पर 'घमौरी' के दाने निकल आये हैं। पाउडर छिड़कने के पहले उसने अँगिया खोल ली। यहाँ कौन देखने आता है ?

किन्तु, झरना के अन्दर कहीं कुछ सुलग रहा है। ज्वाला शान्त नहीं हो रही। भोजन करने बैठी तो कुछ रुचा ही नहीं। जबर्दस्ती दो-चार ग्रास मुँह में डालकर उठ गयी।

दोपहर को उसे सोने की आदत है। गर्मियों में वह फर्श पर शीतल-पाटी बिछाकर—नंगे बदन सोती है। शीतलपाटी की छाप उसकी गोरी देह पर पाँच बजे तक उभरी रहती है। मछली के काँटे जैसा दाग ?

शीतलपाटी पर लेटते ही उसे पंकज की रुखी और झुँझलाहट-भरी बातों की याद आयी।··· क्या हो गया है आजकल ? हर बात पर चिढ़ जाना है, हमेशा मुँह लटका रहता है। बोली में कोई रस नहीं ! डर के मारे झरना आजकल कुछ पूछने का साहस नहीं करती।

पहले, ऑफिस से लौटने के बाद, कम-से-कम पन्द्रह मिनट तक इस

तरह अँकवार मे जकड़े रहते थे मानो मुद्दत की खोयी हुई चीज मिली हो। हर वात का जवाव चुम्बन से देते थे। दिन-भर परिश्रम करने के बावजूद, रात में देर तक जगे रहते, जगाये रहते। अब तो विस्तर पर पडते ही कुम्भकरन की नीद उतर आती है, आँखो मे। और, खुर्राटे की आवाज इधर इतनी कर्कश हो गयी है कि झरना सो नही पाती है।

उस दिन पड़ोसी के गुण्डे लडके ने झरना को फिर छेडा। लेकिन, पति ने कहा—कौन क्या कहता है, क्या वोलता है, क्या देखता है, क्यो देखता है; आदमी इन वातो पर ध्यान देने लगे तो उसका जीना मुश्किल हो जाये। तीन साल से बस इन्ही छोटी वातो को लेकर कम-से-कम पचास आदमी से लड़ाई मोल ले चुका हूँ।

पिछले साल तक झरना को गली की ओर खुलनेवाली खिडकी के पास खडी देखकर पंकज बडबडाने लगता था—जव जानती हो कि गली मे हरामियो का अड्डा है तो खिडकी के पास उस तरह खडी क्यो होती हो?

और, अब? अब इनका कहना है कि आजकल की सफल गृहणियाँ ग्वाले, धोवी और फेरीवाले के सामने जान-बूझकर ब्लाउज के एक-दो बटन खोलकर, चीजो का दर-भाव करती हैं। छिः-छि. कितना गन्दा हो गया है इस आदमी का मन!

किन्तु, वात सच है।

एक दिन झरना, एक फेरीवाले से पुराने कपडो के बदले कांच के वर्तन ले रही थी। फेरीवाला लौण्डा शुरू से ही रट लगाये हुए था—माय जी, खादी कपडा नही लेंगे। सो, न जाने कैसे झरना की छाती से सामने की साड़ी जरा सरक गयी। फिर, झरना ने खादी कपडे की गुदडी-चिथड़ो की गठरी सामने रख दी। लौण्डे के मुँह से विरोध का एक शब्द भी नही निकला।

दूध लेते समय जब से अनजाने में ग्वाले की उँगली जरा छू जाती है—दूध मे पानी की मिलावट कम हो गयी है।

झरना को आज नीद नही आयेगी। उसने सामने की खिड़की खोल दी। वह जानती थी, ठीक इसी समय पीली कोठी के मुँडेर पर एक रोगी युवक नीम की छाँव में आ वैठा होगा। खिड़की खुली रहे या बन्द, उसकी नजर

इधर ही टँगी रहती है।

झरना ने उसे देखकर भी नही देखने का भाव दिखलाया। वह फिर शीतलपाटी पर आकर सो गयी। इस बार उसने अस्त-व्यस्त साड़ी को समेटकर एक किनारे कर दिया। सिर्फ पेटीकोट पहनकर लेटी रही और कनखियों से छत पर बैठे रोगी युवक को देखने लगी! अब उसका मन रोने का बहाना ढूँढने लगा। ''इनके लिए, अपने पतिदेव पंकज के लिए, वह दाल-भात-जैसी चीज हो गयी है। किन्तु, झरना की एक झलक पाने के लिए अब भी लोग टकटकी लगाकर बैठे रहते हैं।'''यह पडोसी का गुण्डा लडका जो अभी जोर-जोर से गीत गा रहा है, वह किसी और को सुनाने के लिए नही। झरना समझती है!

करवट लेते समय वह बडबड़ायी—हाय रे पुरुष की जाति।'''अच्छा, वह भुट्टा लावेगा तो? नही, कभी नही। आकर कहेगा—दिखायी नहीं पड़ा कही बाजार मे फार्म का भुट्टा।

झरना की जीभ पनिया गयी। भुट्टे की सोंधी गन्ध'''नींबू'''हरी मिर्च!!

अचानक कुछ सुनकर वह चौक पडी—अरे! यह तो गाडीवाला दादा की गाडी का हॉर्न है?

वह उठ बैठी। साड़ी पहनते समय उसने लक्ष्य किया रोगी युवक का चेहरा तमतमा गया है। तेज ज्वर बढ़ गया है, मानो।'''हाँ, सच! यह तो गाड़ीवाला दादा की ही गाड़ी है। बिना कुछ सोचे ही उसने खिड़की से पुकार दिया—दादा!

नारीकण्ठ की पुकार दादा नही सुनें, भला!

—अरे तुम? इस मुहल्ले मे कब से हो?

—माँ कैसी है?

—तो, माँ की खोज-खबर अब तक लेती हो?

—माँ से कहियेगा कि '''।

गाड़ीवाला दादा ने कहा—मैं नक्जोबाग से तुरत लौट रहा हूँ।

अब झरना क्या करे? तीन-साढ़े-तीन वर्षों के बाद अचानक उसे आज क्या हो गया? शादी के बाद, राह चलते कई बार गाड़ीवाला दादा पर

उसकी दृष्टि पडी और हर बार नजर चुराकर, मुँह फेरकर उसने अपनी जान बचायी है। इस आदमी का कोई भरोसा नहीं। झरना को पुष्पा की बात याद है। पुष्पा अपने पति के साथ सिनेमा गयी थी। गाड़ीवाला दादा ने देखते ही कहा—क्यों पुष्पा, पुराने दिनों को भूल गयी हो, सो तो ठीक किया है तुमने। किन्तु, पुरानी जान-पहचान के लोगों को देखकर भी नहीं पहचानोगी, ऐसी उम्मीद तुमसे नहीं थी।

पुष्पा कह रही थी, उसके पति ने इस बात को लेकर पुष्पा को जीवन-भर खोंचा दिया। मरते समय भी कह गया—तुम्हारे तो बहुत लोग हैं, पुरानी जान-पहचान के—पुराने मित्र !

अब ? वह तो आवेगा। आवेगा क्या, आ ही रहा होगा। आवेगा तो आवेगा। अच्छा होगा। झरना मन-ही-मन लड़ने लगी—वह आज जी-भरकर बातें करेगी गाड़ीवाला दादा से।

झरना ने गली की ओर खुलनेवाली खिड़की बन्द कर दी। नहाने के घर से चेहरा धो आयी। बालों को कंघी से सँवारा। चेहरे पर फिर एक उँगली स्नो—आँखों में एक सलाई काजल और मुँह में एक बड़ा पान डालने के बाद, धुली हुई साड़ी निकालने लगी। बक्स से निकली हुई, धुली साड़ी की गन्ध झरना को सदा उत्तेजित करती है। एक नशा छा जाता है क्षण-भर के लिए।

आइने के सामने खड़ी झरना ने गली में फेरीवाले की आवाज सुनी। चाबी के झब्बों को बजाता हुआ यह आदमी ठीक इसी समय आकर हाँक लगा जाता है। न जाने क्या कहता है। इसके बाद ही आवेगा, ढाकई-साड़ी बेचनेवाला रिफ्यूजी फेरीवाला—चा—य—का—घो-ओ-ओ-ड़ !

झरना सभी फेरीवालों की आवाज पहचानती है। सभी के आने का, अपना-अपना बँधा हुआ समय है।

गाड़ीवाला दादा का हॉर्न !

सीढ़ियों पर जूते की आवाज क्रमशः निकट होती गयी। झरना ने एक बार फिर अपने को आइने में देख लिया।···यह नयी ब्रेजरी दुःख दे रही है, जरा। पीठ पर 'हुक' गड़ रहा है।

गाड़ीवाला दादा ने कमरे में प्रवेश करते ही पूछा—बगलवाले बरामदे

की कोठरी में कौन रहता है ? उस महिला को, लगता है, मैं पहचानता हूँ।

उसने एक सरसरी निगाह से झरना की गृहस्थी को देखा और पलक मारते ही सबकुछ भाँप गया। अनुभवी शिकारी की तरह उसने एक गिलास पानी माँगा। सिर्फ पानी !

झरना सुराही से पानी डालते समय मुस्कुरायी, पानी पीकर दादा निश्चय ही कोई उद्‌गार प्रकट करेंगे—आ-ह ! कलेजा जुड़ गया ! अथवा—तुम्हारी सुराही का पानी इतना ठण्डा है ?

सचमुच दादा ने यही कहा—तुम्हारी सुराही का पानी '''।

झरना की पतली कमर को एक हाथ से आवेष्ठित करते हुए दादा ने अपने सिर को झरना की छाती से टिकाने की चेष्टा की।

"नः नः दादा ! कोई देख लेगा।"

झरना ने दबी हुई आवाज में विरोध किया, "दादा !"

दादा, अधर-सुधा-रस पान नहीं कर सके। झरना अपने को छुड़ाकर दूसरे कमरे में चली गयी, "मैं चाय बना लाती हूँ।"

"चाय नहीं। जरा, इधर सुनो। क्या कहूँगा तुम्हारी माँ से ?"

झरना सोच में पड़ गयी, वह क्या कहे ? बोली, "बहुत दिन हुए माँ को देखे।"

"तो, चलो न।"

"चलूँ ?"

तीन बज रहे हैं। दो घण्टे में ही वह लौट आयेगी। और दो घण्टे के बाद भी लौटे तो क्या ? उसकी परवाह किसे है ? वह नहीं भी लौटे तो उसके पति को अब कोई दुःख नहीं होगा। सिर का बोझ है वह। और, उनके पास दूसरी चाबी तो है ही। सम्भवतः कोई दूसरी प्रेमिका भी हो, कहीं।

"क्या सोचा ?"

झरना लजायी, "चलूँगी, लेकिन'''।"

"लेकिन, क्या ?"

"आप मुझे सीधे माँ के घर पहुँचा देंगे तो !"

"इतना डर है फिर'''"

"न: न: डर नही !"

दिन-भर उमस के बाद अभी पुरवा हवा चली है। बादल उमड़-घुमड रहे है।

ताला लगाते समय, दादा ने पूछा, "क्यो, किसी से कुछ कहना नही है? एक पुर्जा छोड़ दो लिखकर।"

झरना चुप रही। गाड़ी मे वह पिछली गद्दी पर बैठी। दादा मुस्कराये "तो, झरना सयानी हो गयी है? झरना ने पूछा, "आजकल पारुल दीदी कहाँ हैं।"

दादा इस प्रश्न का अर्थ समझते है। झरना जानना चाहती है कि पारूल से उसका गुप्त सम्बन्ध अब भी है या नही?

दादा ने कहा, "दुनिया-भर की खबर तो पूछती हो। मगर, अपनी खबर नही लेती?"

"अपनी खबर?"

"तीन साल हो गये। दो से तीन तुम लोग कब···?"

गाडीवाला दादा अपनी भोडी-रसिकता पर स्वय हँसे। झरना चुप रही तो उन्होंने फिर कहा, "तुम लोग चेष्टा ही नही करते।"

दादा ने उलटकर झरना की ओर देखा।

गाड़ी, साहित्य-सम्मेलन-भवन के पास आकर दाहिनी ओर मुड गयी। यह बादल बरसेगा अब! किरानियो को रुलानेवाली वर्षा! सभी 'बाबू' भीगते हुए घर पहुँचेंगे एक प्याली गर्म चाय कुछ गर्म·· कुछ गर्म-गर्म पकोड़े·· कॉफी·· भुट्टा नीबू · हरी मिर्च !!

"जो भी हो, तुमने अपनी देह को अब तक पहले-जैसा पालकर रखा है। स्वास्थ्य देखकर मुझे खुशी हुई है।" दादा ने झरना की छाती पर दृष्टि टिकाकर अपना वक्तव्य समाप्त किया। थोड़ी देर और इधर निगाह रह जाती तो जरूर इस सायकिलवाले को धक्का मार देते, गाड़ीवाला दादा।

बाकरगज नुक्कड़ के पास गाड़ी की चाल धीमी हुई। सामनेवाले फुट-पाथ पर छोटी-सी भीड लगी हुई है। न जाने क्या बिक रहा है!

झरना चिहुँक पड़ी, "आँ!"

"क्या हुआ?" दादा ने पूछा।

झरना आँचल में मुँह छिपाकर, फुटपाथ की ओर कुछ खोज रही है। हाँ, उसका पति ही है। पंकज ही है। कुछ खरीद रहा है।

ट्राफिक-पुलिस ने हाथ से राह रोकी। सभी गाड़ियाँ रुक गयीं। झरना का दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। उसे अचानक ज्वर हो गया क्या? नहीं, भीड़ में उसका पति खो नहीं सकता। झरना देख रही है लेकिन पंकज उसको नहीं देख पायेगा। क्या खरीद रहा है! भुट्टा? दूधिया भुट्टा? झरना के लिए ही!

भुट्टावाले की हाँक बीच-बीच में सुनायी पड़ती है—सरकारी फारम का भुट्टा, तीन आने जोड़ा!

बादल, गांधी मैदान पर छाने के लिए दल बाँधकर उतर रहे हैं। झरना को अचानक भुने हुए भुट्टे की सौंधी गन्ध लगी। भुट्टा-नीबू—हरी मिर्च? झरना की जीभ पनिया गयी।

ट्राफिक-पुलिस ने रास्ता छोड़ दिया। सभी रुकी हुई गाड़ियाँ, गियर बदलते समय गुर्रायीं। झरना बोली—दादा जरा रोक के!

दादा के 'क्यों' का कोई जवाब दिये बिना ही झरना एक झटका देकर गाड़ी से उतर गयी। उसने फिर उलटकर देखा भी नहीं। भीड़ में खो गयी—झटपट।

भीड़ में पंकज को लगा उसके हाथ का झोला कोई खींच रहा है, "ए! कौन है? झोला क्यों ` अरे तुम?"

पंकज की ऐसी उत्फुल्ल-मुस्कराहट बहुत दिनों के बाद छलकी है। लगा, उसे युगों बाद मिली है झरना। झरना बोली, "मैंने सोचा कि तुम भुट्टा लाना भूल जाओगे। इसलिए खुद चली आयी।"

"वाह भूल क्यों जाऊँगा! चलो, ठीक है। अच्छा ही किया। आज बहुत दिनों के बाद दफ्तर में जरा पहले ही क्यों छुट्टी मिली है, जानती हो? आज बड़े साहब खुश थे। दो-दो इन्क्रीमेण्ट एक साथ!" अरे-रे, अब तो तुम्हारी यह साड़ी भीगकर लथपथ हो जायेगी।—ए! रिक्शा!"

बारिश शुरू हुई। भीड़ की भगदड़ में दोनों ने एक-दूसरे को देखा और रिक्शे में जा बैठे। रिक्शावाले ने पर्दे के फीते को बाँधते हुए पूछा, "कहाँ चलना है बाबू?"

झरना ने झोले से एक भुट्टा निकालकर कहा, "देखो-देखो इसके बाल कैसे लगते है, ठीक पादरी साहब की भूरी दाढ़ी।"

पर्दे से ढँके हुए रिक्शे के अन्दर झरना की मुस्कराहट रोशनी बिखेरती है—रह-रहकर।

"ज़रा इधर खिसक आओ। और भी ज़रा। भीग जाओगी। सोचा था, आज हम कही बाहर भोजन करने जायेंगे। लेकिन यह सांझ की वर्षा और यह सुनहली सांझ···!"

पंकज की बोली मे न जाने कितने दिनो का संचित रस उतर आया है !·· एक-दूसरे के स्पर्श मे वैसा ही सुख—अब भी जीवित है !! वैसी ही मादक उत्तेजना···?

झरना सरककर पास नही गयी। वह सीधे पंकज की गोदी मे जा बैठी और पंकज की गर्दन पकड़, पांच साल की बच्ची की तरह मचलती हुई—लटक गयी !

[ज्योत्स्ना / अक्तूबर 1962]

संकट

मैं यह नहीं कहता कि मेरा 'सिक्स्थ-सेंस' बहुत तेज है। आदमी को यह विशेष ज्ञान नहीं दिया है, प्रकृति ने। पशुओं में, कुत्ते की षष्ठेन्द्रिय बहुत सक्रिय होती है। मैं, आदमी होकर यह दावा कैसे कर सकता हूँ? किन्तु, प्राणी विज्ञान के विशेषज्ञों के नाम, कभी किसी अखबार में एक पत्र लिखकर —एक सूचना देने की इच्छा अवश्य है कि पशु-पक्षी पालनेवाले—खासकर कुत्ता पालने में धीरे-धीरे षष्ठेन्द्रिय-ज्ञान का विकास हो जाता है। आदमी भी सूंघकर—अशरीरी छायाओं का पीछा कर सकता है। वह भी आनेवाले संकट की घण्टी चौबीस घण्टा पहले ही सुन सकता है। संक्रामक रोग, सामूहिक शोक अथवा आँधी-तूफान की सूचनाएँ—उसे भी पहले ही मिल जाती हैं। उसकी अन्य किसी बुद्धि का लोप हो जाता है अथवा अन्य इन्द्रियाँ शिथिल होती हैं या नहीं, कह नहीं सकता!···

कटिहार जंक्शन पर सुबह आँखें खुलीं। खिड़की की झिलमिली उठाकर, कुहरे में लिपटे हुए, रेलवे-यार्ड, मालगाड़ियों के डिब्बे, शंटिंग करते हुए इंजनों को देखता हुआ—प्लेटफार्म पर मैंने काँच को गिरा दिया। हवा का पहला झोंका—ठण्डा-गरम, खुशबू-बदबू·· संकट की गन्ध लगी? सं··· क···ट?

हाँ, संकट की गन्ध ही है। कटिहार के इस प्लेटफार्म पर मैंने इसके पहले भी कई बार संकटों को पहले ही सूँघा है। प्लेटफार्म पर ही नहीं—

सारे स्टेशन और बाजार, ओवरब्रिज, आसपास के क्वार्टरों पर संकट की छाया को छू-छूकर मैंने अनुभव किया है। जाना है कि पेड़, सिगनल, मैदान, कौआ, खलासीटोले का हनुमानजी का पताका—सभी दम साधकर प्रतीक्षा में हैं। कोई भारी आँधी आनेवाली है? महामारी?…बम?

सन् 1940-41 : ठीक इसी मौसम में, सुबह को ही इस स्टेशन के इसी—चार नम्बर—प्लेटफार्म पर पहली बार ऐसी अनुभूति हुई थी। दो दिनों की यात्रा के बाद—अवध-तिरहुत रेलवे की गाड़ी, हमें बनारस कैण्ट जंक्शन से ढोकर—कटिहार जंक्शन पर पहुँचा जाती। कटिहार पहुँचते ही हमें लगता, घर की ड्योढ़ी पर पहुँच गये। प्लेटफार्म पर एकत्र भीड़ का एक-एक आदमी हमारे घर का है। सभी जाने-पहचाने लगते। रास्ते की सारी थकावट दूर हो जाती। मन में रह-रहकर गुदगुदी लगती। आज भी, ऐसा ही होता है।

उस बार, प्लेटफार्म पर भरथजी को देखकर पहले प्रफुल्लित हुआ था। फिर, एक अज्ञात आशंका हुई थी—इतने दिनों के बाद घर लौटा हूँ। पता नहीं, भरथजी कौन-सा प्रोग्राम लेकर…।

हम उन दिनों नाम के लिए ही पढ़ते थे। यानी हम पढ़ने का, बहाना बनाकर—'राष्ट्रीय' काम करते थे। देश का काम। हम, विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा संचालित स्टुडेण्ट फेडरेशन के सदस्य, उन दिनों अपने-अपने दल का सन्देश हर कॉलिज में सुनाते फिरते। लीडरी करने के सभी नुस्खे, अपने दल के बड़े नेताओं और कामरेडों से हम सीख चुके थे। कोकटी-खादी का गेरुआ पाजामा और कुर्ता, चप्पल और सिगरेट—मैं किन्तु सिगार पीता था—'टैट' वर्मा चुरट! कामरेड बोखारी के पहनावे-ओढ़ावे ने मुझे काफी प्रभावित किया था। वह सिगार पीता था।…लाल-लाल पतले ओंठों पर—काला सिगार!

भरथजी, हमारी मूल पार्टी के सदस्य थे। हालाँकि, हमारा सम्बन्ध तत्कालीन यू. पी. और अभी के उत्तर प्रदेश के नेताओं से था। लेकिन, भरथजी की दौड़ बनारस-कानपुर तक थी। हर दो या तीन महीने बाद भरथजी अचानक किसी दिन पहुँचते। वे अक्सर रात को हमारे होस्टल में आते। अपने चारों ओर एक रहस्य, एक गुप्त-आवश्यक प्रोग्राम, एक गश्ती-

चिट्ठी—एक सतर्क व्यक्तित्व लेकर। हर बार उन्हें कुछ रुपयों की आवश्यकता होती, जिसकी व्यवस्था करने के लिए हमें कभी-कभी चोरी भी करनी पड़ती। उन दिनों किसी-न-किसी रूप से स्टोव, अँगूठी, घड़ी या कलम गुम हो जाया करतीं। लेकिन, ऐसा तभी होता जब हम में से किसी के पास भरथजी की आवश्यकता-पूर्ति के लिए या—सिगरेट पीने के भी पैसे नहीं होते! किन्तु, यह भी सच है कि भरथजी के लिए पैसे जुटाने के काम को भी हम देश का काम समझते थे। इसलिए, उन चोरियों को पाप नहीं—पुण्य मानते थे।

किन्तु, उस बार भरथजी को अपने होम-डिस्ट्रिक्ट के प्रिय जक्शन पर देखकर आशंका हुई थी। मन में झुँझलाहट भी हुई थी। 'इतने दिनों के बाद घर लौट रहा हूँ। नया चूड़ा, नया चावल, नयी साग-सब्जी, नया गुड़, नवान्न, श्रीपंचमी और मेलों का आनन्द, सिर्फ एक महीने में कितना-सा उपभोग कर सकता है कोई। और यहाँ भी कोई प्रोग्राम लेकर पहले से ही भरथजी उपस्थित हैं! पता नहीं, कहाँ जाना पड़े?…

भरथजी की मुस्कराहट देखकर हम सबकुछ भूल गये। असल में भरथजी को देखते ही हमारी, खासकर मेरी हालत तेलचट्टे की तरह हो जाती, जिसे 'भिंडिंग' या 'कुम्हार-ततैया' नामक घोर नीला और चमकीला भौंरा अपने सूँड से अन्धा कर देता है। फिर खींचता हुआ अपने मिट्टी के घर में ले जाता है और बाद में सुना है—अपने ही जैसा 'भिंडिंग' बना डालता है। ·· कितनी बार देखा है, तेलचट्टा भागने की कोशिश करता है। मगर, अन्धा तेलचट्टा किधर भागे?…

उस दिन भी कुहरे की मसहरी को उठाकर सूरज ने खुले प्लेटफार्म पर रोशनी बिखेर दी थी। भरथजी हँसे थे—हूँ! देखता हूँ साथ में विश्वनाथ महाराज का 'परसाद' भी है। ··

मैं कुनमुनाया था—जी! माँ के लिए हर बार यह सब और गंगाजल ले जाना पड़ता है।

मैं लज्जित हुआ था कि मेरे पास विश्वनाथ का 'परसाद' और काशी की गंगा का 'जल' है। जी हुआ था खिड़की से बाहर फेंक दूँ, इन्हें। मगर, भरथजी ने भाँपकर कहा—मजर से इसके एवज में पैसे वसूलते हो या

नही ? अरे कहते क्यों नही कि हर बार पण्डा दस रुपये दक्षिणा लेता है। और, एक झारी गगाजल के लिए घाट के पण्डा को पाँच रुपये'''।

भरथजी जोर से हँसे थे। और, मैंने उस बार घर पहुँचकर पन्द्रह रुपये का हिसाब सुना दिया था माँ को—पन्द्रह रुपये टैक्स के लगे हैं।

माँ को अचरज हुआ तो कह दिया—जानती नही, लड़ाई शुरू हो गयी है। वार फण्ड मे आखिर पैसा कैसे जमा करेगी अंग्रेजी सरकार?'''

भरथजी का प्रोग्राम? उन्होंने कहा था—एकाध दिन कटिहार आ जाना। मैं यही मिलूँगा—अन्नपूर्णा होटल मे।'''

जब तक बनारस मे रहता—मन गाँव के लिए मचलता रहता। घर पहुँचकर, दो-चार दिनों मे ही सबकुछ फीका-फीका लगने लगता। आवारा-मन उचट जाता। फिर, किसी-न-किसी बहाने घर से फिरण्ट!

उस बार कटिहार आकर मालूम हुआ कि भरथजी एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य से कटिहार में कैम्प डाले हुए हैं। मेरे पहुँचने पर वे बहुत खुश नही थे। उन्होंने बतलाया था कि पिछले कई दिनों से इस गली की नुक्कड पर एक आदमी उनको 'वाच' कर रहा है।'''तुम आ गये हो, ठीक है। मैं अब कई दिनो तक स्टेशन नही जाऊँगा।'''

दूसरे दिन मुझे महत्त्वपूर्ण कार्य की जिम्मेदारी देते हुए कहा था—देहाती की तरह सभी से बोलना-बतियाना। सबको बाबू-बाबू कहकर बात करना। काम कुछ नही था। रोज कितनी गाड़ियाँ—मिलेटरी-स्पेशल पास करती हैं, देखना। बस, देखना!

मैंने जिरह किया—बस देखना?

—हाँ। बस देखना!

उसी दिन, पहली बार आसमान मे करीब पचास हवाई-जहाजों को जाते देखा। उसी दिन देखा—स्टेशन की छत से लेकर फर्श तक कालिख पोता जा रहा है। खिड़कियों और बिजली के बल्वों को अन्धा किया जा रहा है। पहली बार सुना और रात मे देखा—ब्लैक आउट!

उस दिन कड़ाके की सर्दी पड़ी थी। मगर, स्टेशन अथवा शहर में, कहीं बाहर मे अलाव नही नजर आ रहा था। दिन में ही पता चल गया था—रात साढ़े दस बजे एक मिलिटरी-स्पेशल है! तार-बाबू ने छोटे तार-बाबू को

चार्ज देते समय कहा था, बंगला मे—साड़े दश टाय'''।

दीवारो पर, बडे-बड़े पोस्टर चिपके हुए थे। 'अफवाहो पर कान मत दीजिए'—'आपकी बात दुश्मन के फायदे की हो सकती है'—'अफवाह फैलानेवाला दुश्मन है !!'

रोज, आसाम की ओर जानेवाले मिलेटरी-स्पेशलो को देखता। प्लेटफार्म पर फौजियो के सामूहिक लगर, भोजन। विभिन्न रगो, जातियो, देशो के लोग। समाज के चुने-चुनाये, स्वस्थ-सुगठित शरीरोंवाले नौजवान —जिन्हें मिलेटरी कहते है—पेट के लिए अपनी जान देने जा रहे हैं। अग्रेजी सरकार की फौज !

हठात्, एक दिन मैं डर गया। मैंने भरथजी से कहा—भरथजी ! मुझे सबकुछ अजब-अजब-सा लगता है। मुझे लगता है, मैं भी किसी दिन चला जाऊँगा, किसी मिलेटरी-स्पेशल पर चढकर !

मैंने पूछा था, साहस बटोरकर—आखिर, रोज-रोज मिलेटरी-गाड़ी देखने से हमारी पार्टी का क्या फायदा होगा ?

भरथजी ने मुझे छुट्टी दे दी—तुम अब घर जा सकते हो। लेकिन, मैं घर नही गया। नही जा सका। अँधेरे मे प्लेटफार्म पर, रात ग्यारह बजे तक बेकार इधर-उधर खडा होकर लोगो से, सौनोली जानेवाली गाडी या मनिहारी से आनेवाली गाड़ी अथवा जोगबनी की ओर जानेवाली गाडियो के बारे मे पूछताछ करने का नशा सवार हो गया था, मानो।

लेकिन, मैं भीषण डरा हुआ था। चारो ओर एक अद्‌भुत छायाओ से घिरा हुआ पाता था, अपने को। मिलेटरी-गाडियो और पैसेंजर ट्रेनो के प्लेटफार्म छोड़ने के बाद, लगता—हर गाड़ी मे मेरा अपना आदमी चला गया है, कोई। जो अब नही लौटेगा। जिन्हे अब कभी नही देख पाऊँगा। वह मराठा रेजीमेण्ट का नौजवान, जो सोरावजी रेस्ट्रां मे 'पिक्ल' खोजने आया था, वह बिना अँचार खाये ही मर जायेगा। गोरखा, बलूच, जाट, राजपूत। सौनोली की ओर जानेवाली एक पार्सल ट्रेन मे जो बच्चा रो रहा था उसकी आवाज मेरा पीछा करती रही।

मैंने भरथजी से कहा, "मुझे लगता है, बहुत जल्दी ही हमला होगा !"
भरथजी मेरा मुँह देखने लगे थे, "कही सुना कुछ ?"

"नही ! मुझे लगता है।"

और, उसके दो-तीन दिन बाद ही बर्मा पर जापानियों ने चढाई कर दी।

भरथजी दो-तीन दिनो के लिए पटना गये। उनके बदले मे दो साथी आये—रहीम साहब और चनरभूसन।

दस-पन्द्रह दिनो के बाद ही चारो ओर कोहिमा, इम्फाल, डुमडुमा नामो की डुगडुगी हर आदमी के कानो के पास बजने लगी।

जिधर मिलेटरी-स्पेशल जाती थी अर्थात् आसाम की ओर से अब आने लगी भरी गाड़ियाँ—लदी गाडियाँ—'इवैक्वी' शब्द उसी दिन पहली बार सुना।

रोज तीन-चार गाड़ियाँ आती और प्लेटफार्म पर हजारो नर-नारियों को उतार देती।...थके, हारे, भागे, बीमार, परिवार से बिछुडे, भूखे, अधपगले इन्सान!...

पार्टी के आदेश पर हम सभी, विभिन्न सार्वजनिक सेवा-समितियों के वालेण्टियर हो गये। मैं भारत-रिलीफ सोसायटी का स्वयसेवक बना और रहीम साहब केन्द्रीय सेवा-समिति मे गये।

लेकिन, मैं अपने साथियो मे सबसे बड़ा कापुरुष और रिएक्शनरी निकला। क्योकि 'मृतक सत्कार विभाग' में दस दिनों तक रहकर भी मैं कुछ 'सचय' नही कर सका। असल में हम सेवा कर रहे थे—'कलेकसन' के लोभ में। जो भी मिल जाये—सोना, चाँदी, बर्तन, कारतूस, बैटरी, घडी। चनरभूसन इस मामले में सबसे ज्यादा मिलिटेण्ट निकला। उसने और सिर्फ उसी ने सबसे ज्यादा कलेकसन किया था।...कोई उस तरह, अपने गुप्तांग में कीमती पत्थरो की छोटी पोटली छिपाकर रख सकता है, भला? चनरभूसन मृतक सत्कार समिति में हो गया था। बनजरवा मेहतर से उसने यह शिक्षा ली थी। हर मुर्दे को उलट-पुलटकर टटोलकर देखने की कला में वह प्रवीण हो गया था।

दिन-रात चीख-पुकार, आह-कराह, पागलों के प्रलाप, हँसी के बीच मिलेटरी-गाड़ियाँ जाती। चनरभूसन एक टोमीगन चुराने मे सफल हुआ। मैं एक बीमार पजाबी लड़की के प्रेम मे पड़ गया। उसका घरवाला सबकुछ

खोकर उसके साथ कटिहार तक आया। मगर, उससे आगे नहीं चल सका। कैम्प-अस्पताल में उसको मरते हुए मैंने देखा था। उसकी बीमार बीवी को खबर भी मैंने ही सुनायी थी। वह कुछ नहीं बोली थी। चुपचाप मुझे देखती रही थी। फिर, मुँह में चुहलगम की तरह कोई चीज डालकर उससे दाँत रगड़ने लगी थी।

चनरभूसन ने कहा था—तुम अस्पताल की ड्यूटी के भी काबिल नहीं। रहीम जायेगा तुम्हारे बदले।

रहीम ने उस पंजाबी लड़की के ब्लाउज के अन्दर हाथ डालकर बटुआ निकाल लिया था। जिससे, सिर्फ दस रुपये का एक नोट निकला था। एक तावीज!

वह लड़की जिस दिन मरी, मैं घर भाग आया। भाग आया मुजरिम की तरह। लगा, मैंने ही उसके स्वामी का गला टीपकर मार दिया है! मैंने उस, बीमार औरत की अस्मत लूटी है। मैंने, हमने। हम सभी ने मिलकर! ···तावीज मेरे पास है, आज भी।

सात साल बाद—दूसरी बार संकट की सूचना मिली। सूचना नहीं, आभास मिला!

इस बार, गाड़ियों में लदकर जो लोग आये उन्हें 'रिफ्यूजी' कहा गया।

भरथजी बहुत बड़े नेता हो चुके थे। चनरभूसन भी बहुत बड़ा मजदूर नेता हुआ, रहीम साहब दंगे में मारे गये और मैं कापुरुष कुछ नहीं कर सका। चार साल तक जेल में सिर्फ उसी पंजाबी लड़की की लाश के पास में लेटकर काट दिया। कोई लिटरेचर, कोई शास्त्र नहीं पढ़ा। न किसी से लड़ा, न किसी का विरोध किया।

शरणार्थियों की सेवा का अवसर मिला। कटिहार, पार्वतीपुर के कई कैम्पों में महीनों सेवा करता रहा। हाँ, इस बार भी कई पार्टियों के स्वयं-सेवक थे। हमारी पार्टी के भी थे। मानो, इस बार मुझे अन्तिम अवसर दिया गया था।

पार्वतीपुर के कैम्प में मैं एक दिन फूट-फूटकर रो पड़ना चाहता था।

बेवजह ! किन्तु, मैं रोया नहीं, दाँत को चुइनगम-जैसे पदार्थ से साफ करती हुई, उस लाश के सामने मैं रो नहीं सका। चुपचाप, एक कागज पर रोने लगा। कई दिनों तक रोया—रोता रहा।

पार्टी में एक ऐसे तबके के लोग भी थे जो बैठे-बैठे ही तीर-कमान छोड़ते थे। कई वर्षों के बाद, इसी वर्ग के एक साथी ने, चुराकर मेरा वह रोना पढ़ना शुरू किया और रोने लगा। उसने कहा—यार, यह तो लिटरेचर है ! यह समाजवादी-यथार्थवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है।

किन्तु, डॉक्टरों ने मेरे घरवालों को राय दी कि कांके में कुछ दिन रखकर देखिए। अभी शुरूआत है। सही भी हो सकता है दिमाग !

इस बार, फिर कटिहार जंक्शन पर मैंने वैसी ही अशरीरी छायाएँ देखी हैं—बहुत दिनों के बाद। और, मैं जानता हूँ कि ये सारे लक्षण वही हैं।...संकट के बादल नहीं, पहाड़ टूटनेवाला है। मैं कहता हूँ, मैं कहता हूँ...।

मगर, एक बार जिसे पागल करार दे दिया जाये, उसकी बात पर जीवन-भर कोई ध्यान नहीं देते।

मैं कुत्ते की तरह धरती सूँघता हुआ चला जाऊँगा, किसी दिन—किसी भी तरफ ! आसपास ही कहीं वह पंजाबी-इवैक्वी लड़की दफनायी गयी थी। पासवाले बाग में ही रिफ्यूजी सावित्री एक खेमे के अन्दर धीरे-से कराह उठी थी—मरे गेलाम !

सभी प्रतीक्षा कर रहे हैं—वेटिंगरूम में।

[ज्योत्स्ना / मार्च 1965]

विकट संकट

दिग्विजय बाबू को जो लोग अच्छी तरह जानते-पहचानते हैं, वे यह कभी नहीं विश्वास करेंगे कि दिग्विजय उर्फ दिगो बाबू कभी क्रोध से पागल होकर सड़क पर, खाली देह और ऊँची आवाज में किसी को अश्लील गालियाँ दे सकते हैं। लोग उनको अजातशत्रु मानते हैं। और भूल-चूक से एकाध शत्रु कहीं पैदा भी हुआ हो तो उन्होंने दिगो बाबू को कभी ऊँचे स्वर में बोलते नहीं सुना होगा। अपनी क्रोधहीनता के कारण ही उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है।

किन्तु लोगों ने देखा और पहचाना कि अपने अतिपुरातन भृत्य को बीच सड़क पर बेंत से पीटने और गालियाँ देनेवाले सचमुच दिगो बाबू ही हैं। उनके इस अभूतपूर्व कोप का कारण पूछनेवाले भी दिगो बाबू के मुँह से होनेवाली 'प्रथम वर्षा' में भीग गये। आसपास एकत्रित सभी लोगों को 'साले' कहकर सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि उन्हें सबकुछ मालूम है और वे सभी को ठीक करके दम लेंगे। तमाशा देखनेवालों को अच्छी तरह दिखला देंगे। लोग सब्र करें।

इतना कहकर वे अपनी कोठी के अहाते में गये, फिर बंगले के बरामदे पर रखे हुए कई गमलों को लात मार-मारकर नीचे गिरा देने के बाद अन्दर चले गये। निःशब्द खुलने और बन्द होनेवाला दरवाजा आज पहली बार चूँ-चूँ कर उठा। ताड़ित भृत्य रामटहल अँगोछे से अपनी पीठ झाड़ता हुआ

उनके पीछे-पीछे चला गया। बस !··· लोग सब्र करें ? पता नहीं फिर कितनी देर के बाद वे अच्छी तरह तमाशा दिखाने को बाहर निकलें ?··· उन्हें लोगों के बारे मे सबकुछ पता है और लोगो को यह नही मालूम कि उन्होंने दिगो बाबू का क्या बिगाड़ा है। उनके घर में जिनका 'आना-जाना' है, वे भी आज उनकी 'शान्ति-कुटी' में पैर देने का साहस नही करते। फिर कारण कैसे मालूम हो···?

कामवाले अपने-अपने काम पर गये और बेकाम के लोग कई घण्टों तक - बेकार न बैठकर सामने पार्क मे ताश खेलते रहे। किन्तु किसी खिड़की या दरवाजे से फिर कोई बाहर नही आया, न किसी प्राणी या वस्तु की आवाज ही बाहर आयी। जैसी नाटकीयता से गमलो पर पदाघात करके और जिस वेग से वे अन्दर गये थे, उस हिसाब से अन्दर पहुँचने के एक मिनट बाद ही 'टाँय-टाँय' विस्फोट अथवा काँच के बर्तनो की टूटती आवाज अथवा किसी के अचानक फूट-फूटकर रोने का स्वर गूँज जाना चाहिए। परन्तु दो घण्टे बाद भी कुछ नही हुआ और धीरे-धीरे रहस्य गम्भीर होता गया।

रात के दस बजे इस रहस्य को भेदन करके एक उड़ती-सी खबर फैली कि दिगो बाबू के घर मे मुकम्मल हड़ताल है। दिगो बाबू के अतिरिक्त कोठी मे रहनेवाले अन्य सभी प्राणी दिगो बाबू के विरुद्ध असहयोग-आन्दोलन कर रहे हैं। अर्धांगिनी अपने पूरे अंग को समेटकर अँगनाई की एक छोटी कोठरी मे चली गयी हैं, प्रजा अर्थात् पुत्र अराजक हो गया है; भृत्य किसी वचन का पालन नही करता; महाराज मनपसन्द भोजन बनाने लगा है। यहाँ तक कि घर की बिल्ली भी गुर्राती है देखकर।···हाय रे, दिगो बाबू का सुख का संसार ! हाय री उनकी 'शान्ति-कुटी', अर्थात् न्यू पटेलपुरी में नवनिर्मित दिगो बाबू की कोठी !!

दूसरे दिन सूर्योदय से पहले ही तमाशा शुरू हो गया।

दिगो बाबू के लाड़ले बेटे श्रीहर्ष ने अपनी कोमल मधुर आवाज को कर्कशनम् कर, भोले-भाले चेहरे को कठोर क्रूर बनाकर अखबार देनेवाले लड़के से कहा, "अभी अखबार पहले 'छोटी कोठी' मे देगा अब से—समझा ?"

'छोटी कोठी' अर्थात् कोठी की अतिथिशाला, जिसमें श्रीहर्ष रहता है। सभी पत्र-पत्रिकाओं को बगल में दबाकर खुले आम माचिस जलाकर, सिगरेट सुलगाकर, धुएँ का गुब्बारा छोड़कर श्रीहर्ष अपनी छोटी कोठी की ओर चला गया।

थोड़ी देर बाद, श्रीहर्ष की माताजी यानी श्रीमती धर्मशीला अपने पति को, न जाने किस बात पर धिक्कारती हुई बाहर बरामदे पर आयी। जिस महिला को लोगों ने हर एकादशी की साँझ को अपने पति का चरणोदक पीते देखा है, वह कह रही थी—"भोर-ही-भोर जो इनका नाम ले ले, उसका सारे दिन का सगुन चौपट!"

कल जिस पर मार पड़ी थी वही चाकर आज निडर होकर लॉन में, आरामकुर्सी पर लेटकर बीड़ी खींच रहा है। और, महाराज अपने दीर्घ दाँतों को दँतुअन से रगड़ता हुआ यत्र-तत्र थूकता जाता है—मैं किसी का नौकर नहीं। जिसको 'चाह' पीना है 'होटिल' से मँगवा ले। मैं अभी गंगाजी में नहाकर, बिड़ला मन्दिर जाऊँगा। आकथो···

आश्चर्य! लगता है दिगो बाबू को जीवन में सिर्फ कल ही—पहली और अन्तिम बार—क्रोध हुआ। आज वे पुनः धीर-गम्भीर और सौम्य-शान्त हैं—सबकुछ देख-सुनकर भी।

कन्धे पर धोती-तौलिया डालकर बाहरवाले खुले नल पर जाते देखकर किसी को विश्वास नहीं हुआ कि दिगो बाबू बाहर ही नहायेंगे, जहाँ नौकरानी बर्तन माँजती है।

दिगो बाबू ने सड़क पर हाँक लगानेवाले पूरी-भाजीवाले को पुकारा। राह चलते पनौरे-पकौड़े-कचालू-छोले खानेवाले लड़कों को सुबह-शाम निःशुल्क स्वास्थ्यपूर्ण सीख देनेवाले दिगो बाबू को इस तरह बासी पूरी-भाजी खाते देखकर एक सहृदय-पड़ोसी का हृदय हिल गया और उसने 'अरे-रे यह क्या, यह क्या ··' कहकर सहानुभूति-विगलित स्वर में कुछ कहने की चेष्टा की। किन्तु दिगो बाबू ने एक अंग्रेजी वाक्य का ठेठ भारतीय अनुवाद करके कपट-नम्र उत्तर दिया, "जनाब! आप अपने घरों में जाकर तेल डालें।"

दोपहर को उनके पूर्वी पड़ोसी एक 'अर्थपूर्ण बात' अर्थात् रुपये-पैसे में

सम्बन्धित वात सुनाने गये, "श्रीहर्ष वावू ने रोड नम्बर पाँच के फ्लैट के किरायेदारों को आज नोटिस दिया है कि मकान का किराया श्रीहर्ष वाबू के हाथ में ही···!"

दिगो वावू ने बीच में ही काट दिया, "हाँ, प्लॉट और फ्लैट श्रीहर्ष के नाम है, इसलिए मकान का किराया उसी को मिलना चाहिए।"

श्रीहर्ष ने किरायेदारों को ही नही, दिगो बाबू को भी नोटिस दिया है —जीवन-बीमा के पैसे का 'नामिनी' वह नही रहना चाहता। उसे पैसे नही चाहिए।" वह किसी का आश्रित नही।

श्रीमती धर्मशीला ने भी कुछ ऐसा कहा, जिसका आशय यही होता है कि वह भी दिगो बाबू के आश्रय को श्राप समझती है।

दिग्विजय बावू एकदम चुप रहे। उनकी लम्बी और गम्भीर चुप्पी से माँ-बेटा, नौकर-चाकर सभी उत्तेजित हो गये, "इनको क्या है? चुप रहें या बोलें—मौज में ही रहेंगे। सकट तो हम लोगों के सिर है!

"आप भला तो जग भला। इनके सुख-चैन में कोई कमी न हो कभी। कोई मरे इनकी बला से।"

दिग्विजय बावू ने अपनी उँगली में दाँत काटकर देखा; नही, वह सपना नही देख रहे!

आखिर, वात तरह-तरह की बातें लेकर उड़ी। सारे शहर के हर 'नगर' और 'पुरी' में फैलती गयी। तब, दिग्विजय बाबू के हर वर्ग और समाज के मित्रों का आगमन शुरू हुआ।

'शान्ति-कुटी' में प्रवेश करनेवालों की दृष्टि दूर से ही रामटहल के गन्दे-चिकट लँगोट पर पड़ती, जिसे उसने बतौर बगावत के झण्डे के दिगो बाबू की खिड़की पर पसार दिया है।

दिगो बाबू के एक वकील मित्र ने जिरह करके मामले के मूल-सूत्र को पकड़ने की चेष्टा की।···नौकर को पीटने के बाद ही पत्नी और पुत्र ने विद्रोह किया या पहले? और नौकर यानी रामटहल तो बहुत पुराना चाकर है। दिगो बाबू जब कालेज में पढ़ने आये थे, रामटहल को साथ ले आये थे। दिगो बाबू की पढ़ाई खत्म हुई, नौकरी शुरू हुई—खत्म हुई—रामटहल सदा साथ रहा। शादी और गौने में भी वह दिगो बाबू से सटकर खड़ा

था…।

दिग्गो बाबू के दूसरे मित्र खुफिया विभाग में काम करते हैं और उनका यह विश्वास है कि संसार में जितने भी अपराध या अघटन होते हैं उनके पीछे कहीं-न-कहीं किसी स्त्री का कोमल हाथ जरूर होता है।…इस मामले में औरत तो सीधे सामने है। लेकिन इसके अलावा कोई और औरत तो कहीं नहीं ?

श्रीमती धर्मशीला से बहुत देर तक बेमतलब की बातें करके वे अपने मतलब की बात नहीं निकाल सके। किसी औरत या लड़की का पता नहीं चला। पति से इस 'विराग' और असहयोग का कारण पूछने पर श्रीमती धर्मशीला रामटहल की ओर देखकर चुप हो जाती।

तब, दिग्विजय बाबू के खुफिया-विभागीय मित्र ने दूसरे सिरे से शुरू किया… कहीं श्रीमती धर्मशीला ही तो वह 'औरत' नहीं ? अत: उन्होंने रामटहल की देह में नुकीले सवाल गड़ाकर 'थाहना' शुरू किया।…एक बार इसी तरह कटहल में लोहे की कमानी गड़ाकर चोरी का सोना बरामद किया था।

लेकिन रामटहल शुरू से अन्त तक हर सवाल का एक ही जवाब देता रहा—"मालकिन असल सती नारी हैं!"

उन्होंने तब उन गमलों की परीक्षा की जिन्हें दिग्गो बाबू ने लात मारकर गिराया था, पर कुछ हाथ नहीं लगा।

तीसरे दिन किसी अज्ञात हितचिन्तक ने दिग्गो बाबू के बड़े बेटे को तार लगा दिया—"बाप नवेजान है, जल्दी आइए।"

दिग्गो बाबू के निर्जला मौन-व्रत ने लोगों को भी हैरत में डाल दिया है। जिन अपराधों के लिए कोई भी अपनी स्त्री, बेटे, नौकर, सभी को बाहर निकाल सकता है, उन्हें चुपचाप सहने का क्या अर्थ हो सकता है भला ? दिमाग नहीं है या वह भी दीवार-घड़ी की तरह बन्द हो गया है ?

दुर्गापुर से दिग्गो बाबू का बड़ा बेटा श्रीपार्थ अपनी स्त्री श्रीमती भवानी के साथ दौड़ा आया। उनकी अगुवानी के लिए श्रीमती धर्मशीला और श्रीहर्ष एक ही साथ दौड़े। श्रीहर्ष ने कहा, "भैया! डाक्टर…!!"

"बाबूजी कैसे हैं?"

"अरे, उनको क्या है बेटा ! सकट तो हम लोगों के सिर है। वे तो मौज मे हैं और मौज मे रहेंगे।"

श्रीपार्थ तथा उसकी पत्नी को स्टेशन पर ही मालूम हो गया था कि बाबूजी लवेजान नही, 'सनक' गये हैं।···सनक गये है माने पागल ? सुनते ही श्रीमती भवानी की देह मे कँपकँपी, कलेजे मे धड़कन, गले मे घिग्घी और सिर मे चक्कर—सब एक साथ ! श्रीपार्थ ने समझा-बुझाकर अपनी पत्नी का दिल मजबूत किया—"पागल हो गये हैं तो क्या—हैं तो हमारे बाप ही !"

किन्तु परिवार के सभी प्राणियो को कोठी के फाटक की ओर झपटते देखकर भवानी देवी फिर भय से पीली पड़ गयी।···श्रीहर्ष का रह-रहकर 'भैया, डॉण्ट', श्रीमती धर्मशीला की आतंकपूर्ण आँखें, खिडकी पर प्रसारित रामटहल का गन्दा-चिकट लगोट, फिसफिसाहट और इशारो में बातें देख-सुनकर श्रीपार्थ की अवस्था भी शोचनीय हो गयी।

वे सभी दल बाँधकर, दबे-पाँव चुपचाप बरामदे मे आये। श्रीमती भवानी सबसे पीछे थी। रामटहल दिगो बाबू के कमरे का दरवाजा खोल-कर इस तरह खड़ा हुआ मानो पिजडे मे बन्द किसी हिंस्र प्राणी की झाँकी दिखला रहा हो। दिगो बाबू ने 'गीता रहस्य' मे गडी हुई आँखो को ऊपर उठाने की चेष्टा नही की। श्रीपार्थ ने दूर से ही मूक-प्रणाम किया। श्रीमती भवानी, साहस बटोरकर आगे बढ रही थी कि रामटहल ने दरवाजा बन्द कर दिया।

सभी ने एक साथ लम्बी साँस ली।

श्रीमती धर्मशीला बोली, "बेटा ! तुम तो इनके 'आश्रित' नहीं। तुम लोगों को क्या डर ? सकट तो हमारे सिर है !"

तब तक रसोईघर मे महाराज ने हनुमान-चालीसा का स-स्वर दैनिक पाठ शुरू कर दिया था, "संकट मोचन नाम तिहारो··।"

पाँच मिनट मे ही हर व्यक्ति के मुँह से पच्चीस बार 'सकट' सुनकर श्रीपार्थ के मन मे एक काँटा-सा गड़ने लगा—संकट··कंटक···मं···कट ! उसने पूछा, "सकट क्या है ?"

रामटहल ने कुछ कहना चाहा तो श्रीहर्ष ने उसे चुप कर दिया।

श्रीहर्ष संकटकालीन समस्याओं पर पूर्ण प्रकाश डालने को उत्सुक हुआ, किन्तु श्रीपार्थ ने उसको अंग्रेजी में समझा दिया कि वह सभी से अलग-अलग (इनडिविजुअली) बातें करना चाहता है। अतः माँ को छोड़कर बाकी सभी इस कमरे से बाहर निकल जायें। जिसको पुकारा जाये, वही आये। कोई किसी को कुछ सिखाये-पढ़ाये नहीं।

श्रीमती भवानी उधर से तनिक खुश, ज्यादा परेशान होकर आयीं और अपने स्वामी से पूछने लगीं "बाबूजी मुझे बुला रहे हैं।" "हाँ, बहुत प्यार से बुला रहे हैं। मैं खिड़की से झाँककर देखने गयी तो पुकारा—बेटी!"

श्रीपार्थ ने अपनी माता की ओर देखा। श्रीमती धर्मशीला चुपचाप अपना बयान देने लगीं और श्रीमती भवानी 'क्या करे नहीं करे' का सवाल अपने मुखड़े पर जड़कर वहीं खड़ी रहीं।

श्रीमती धर्मशीला, श्रीहर्ष, रामटहल और महाराज से अलग-अलग साक्षात्कार सम्पन्न करके श्रीपार्थ ने संकट का सूत्र पकड़ा। और, तब उसको अचानक ज्ञात हुआ कि उसके पिता दिग्विजय बाबू सचमुच अभूतपूर्व पुरुष। लगातार तीन-चार दिन तक ऐसे विकट संकट में रहकर भी जिनका माग सही-सलामत है, वे निश्चय ही देवता हैं।

श्रीपार्थ अपने उत्पीड़ित पिता की चरणधूलि लेने के लिए दौड़ा। श्रीमती भवानी को निकट बुलाकर कुछ कहा। श्रीमती भवानी ने घबराकर श्रीहर्ष, रामटहल और अन्त में श्रीमती धर्मशीला की ओर देखा... इतने पागलों के बीच ' हे भगवान !

श्रीमती भवानी अपने पति के पास भागकर चली गयीं।

संकट की मूल-कहानी इस तरह शुरू होती है :

"अष्टग्रह की भयावह अफवाहों के बीच एक दिन इस नगर की 'बूढ़ी-सेठानी-धर्मशाला' में एक त्रिकालदर्शी ज्योतिषी ने अपना डेरा डालकर ऐलान करवा दिया कि वह एक पखवारे से एक दिन भी ज्यादा इस शहर में नहीं रहेगा। जिन्हें अपने भूत, भविष्य और वर्तमान का दर्शन करना अथवा बिगड़ी तकदीर को सुधारना हो जल्दी करें।

अखण्ड सकीर्तनो के असख्य ध्वनि-विस्तारक यन्त्रो के आतकपूर्ण हाहाकार और महायज्ञ के कटु-पवित्र धुएँ से ढके हुए इस नगर मे त्रिकाल-दर्शीजी आशा की किरण नही, उम्मीद का सूरज लेकर आये। लोगो की जान-मे-जान आयी।

तब एक दिन उपयुक्त अवसर देखकर श्रीमती धर्मशीला ने अपने पति से निवेदन किया कि क्यों न एक दिन त्रिकालदर्शन···

श्रीमती धर्मशीला अपने पति की मुद्रा देखकर घबरायी। किन्तु दिग्विजय बाबू ने झिड़की नही दी। प्रेम-लपेटे शब्दो मे ही उन्होंने पूछा कि अक्ल से बड़ी भैंस कैसे हो सकती है?

श्रीमती धर्मशीला मुस्कराकर रह गयी। वह जानती थी कि उसके 'कर्मयोगी' पति यही कहेगे। दिगो बाबू ने उस दिन के समाचार-पत्र मे प्रकाशित पण्डित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य पढ़कर सुना दिया।

किन्तु लगातार तीन बार बी. ए की परीक्षा मे असफल होने के बाद श्रीहर्ष को 'तकदीर के लेख' पर अटूट विश्वास जम गया था। वह दूसरे ही दिन काशी से प्रकाशित एक प्रतिष्ठित पत्र की कतरन ले आया—"माँ, देखो यह श्री सम्पूर्णानन्द की चेतावनी, नेहरूजी के नाम। जरा बाबूजी को दिखला दो—माने—पढने को कहो!"

दिगो बाबू ने कतरन पर सरसरी निगाह डालकर देखा। फिर, सस्वर गुनगुनाने लगे, 'होइहै सोइ जो राम रचि राखा···!'

श्रीमती धर्मशीला को बल मिला। किन्तु रामटहल, राम एवं चुनभुन झा यानी महाराज सुबह-शाम ताजा और भयानक अफवाह लेकर घर लौटने लगे, रोज। श्रीहर्ष को रात मे नीद नही आती। आँख लगते ही बुरे सपने देखता और चीख पडता।

श्रीमती धर्मशीला चिन्तित हुई फिर। भय से सूखे हुए श्रीहर्ष ने सूचना दी कि मुन्सिफ साहब तथा दूसरे छोटे-बड़े हाकिमो ने ज्योतिषी से अपनी कुण्डली दिखवायी है।···सिविल-सर्जन साहब दिन-रात ज्योतिषीजी के साथ ही रहते हैं।···कलकत्ता का एक बड़ा भारी सेठ स्पेशल हवाई जहाज से उडकर आया है—परिवार सहित।

जीवन-भर पेशकारी का पेशा करके दिग्विजय बाबू का 'कर्म' मे दृढ

विश्वास जम गया है। इसलिए बुद्धि भी बलवती हो गयी है। पर हाकिम-हुक्काम का नाम सुनते ही वे तुरन्त प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। अदालत और फौजदारी के हाकिमों के बारे में सुना तो सोच में पड़ गये। फिर बोले, "मेरी तो कुण्डली ही नहीं।" पत्नी बोली, "तो क्या हुआ? किसी फूल का नाम लेते ही कुण्डली बना देते हैं, सुना है।" "लेकिन मैं धर्मशाला में जाकर अपना भविष्य नहीं देखना चाहता।" दिनो बाबू ने एतराज किया।

"डबल फीस लेकर घर पर भी जाते हैं ज्योतिषीजी।"

अन्ततः तय हुआ कि श्रीहर्ष डबल फीस लेकर जायेगा और फिटन पर ज्योतिषीजी को सादर लिवा लायेगा।

सभी को अपार हर्ष हुआ'''घर के 'कर्ता' के भविष्य के साथ ही सभी की किस्मत 'नत्थी' है।'''मालिक राजी हो गये, यही बड़ी बात है।

ज्योतिषीजी को फिटन लेकर श्रीहर्ष बुलाने गया। श्रीमती धर्मशीला ने अपने पति को सलाह दी, "जब डबल फीस दिया गया है तो बातें भी 'डबल' करके पूछ लीजियेगा।"

"डबल करके माने?"

"मतलब, अपने अलावा घर के और लोगों के बारे में खुलासा पूछ लीजियेगा।"

ज्योतिषीजी आये। जटा-दाढ़ी और त्रिपुण्ड-भभूतवाले ज्योतिषियों को लोगों ने देखा है। सूट-बूटवाले इस ज्योतिषी को देखते ही लोगों को अपने-अपने भविष्य की हल्की झलक मिल गयी, मानो''। यह आदमी जरूर जादू जानता है।

डॉक्टरों की तरह एक हाथ में बैग और कण्डक्टर की तरह दूसरे हाथ में एक बड़ा पोर्टफोलियो-बैग लटकाकर फिटन से ज्योतिषीजी उतरे। दिनो बाबू को देखते ही उन्होंने अपनी पहली ही बातों से विस्मित और अप्रतिभ कर दिया। बोले, "मैं विशुद्ध-वैज्ञानिक ढंग से गणना करता हूँ। इसलिए मैग्निफाइंग-ग्लास के अलावा स्टेथस्कोप, ब्लडप्रेशर-ऑपरेटस और थर्मामीटर भी रखता हूँ। ज्यामितिक-कॉम्पस-अक्षन और अक्षांश के सही माप के लिए इन्स्ट्रूमेण्ट-बाक्स, विभिन्न राज्य एवं जिलों के नक्शे रखना आवश्यक

हो जाता है।'

दिगो बाबू की 'शान्ति-कुटी' के निवासियों ने मन-ही-मन जय-जयकार किया। किन्तु तब तक दिगो बाबू ने एक नयी शर्त लगा दी। वे एकदम एकान्त में अपने भविष्य की गणना करवायेंगे।

दिगो बाबू के कमरे का दरवाजा बन्द हुआ। सभी ने एक साथ अपने-अपने ललाटों पर एक अद्भुत गुदगुदी का अनुभव किया। सभी की हथेली एक साथ 'कपाल' पर पहुँची।···जै भगवान्!

पूरे तीन घण्टे के बाद ज्योतिषीजी हँसते हुए कमरे से बाहर निकले। दिगो बाबू के उत्फुल्ल मुखमण्डल में सभी को अपना-अपना भविष्य उज्ज्वल दिखायी पड़ा। अतः श्रीहर्ष दूने उत्साह से ज्योतिषीजी के साथ फिटन पर जा बैठा।

सबसे पहले श्रीमती धर्मशीला ने पूछा, "भगवान् की दया से सबकुछ सही ही बताया होगा! है या नहीं?" "अरे मारो गोली। ठग हैं सब।" "क्यों? कुछ 'ऐसी-वैसी' बातें हाँक गया?"

"अरे, हाँकेगा क्या? नक्शा और थर्मामीटर से भविष्य देखनेवाला इतना चतुर तो होगा ही कि न्यू पटेलपुरी में इतनी बड़ी कोठी बनवानेवाला, पेन्शनयाफ्ता आदमी—जिसका बड़ा बेटा हाकिम हो और छोटा स्वस्थ, सुन्दर और बेवकूफ, जिसकी पत्नी का नाम धर्मशीला···।"

श्रीमती धर्मशीला अपने प्रौढ़ पति की इस बचकानी मुद्रा को देखकर बहुत दिनों बाद पुलकित हुई।···सचमुच त्रिकालदर्शी हैं न?

श्रीहर्ष ने लौटकर अपनी माता से अपने पिता के भविष्य के बारे में पूछा।

"अरे, वे तो कहते हैं कि मुफ्त में पैंतीस रुपये···?"

"मुफ्त में? कुछ बतलाया नहीं?"

"कहते हैं, ठग हैं सब।"

"हूँ!···तुम एक बार मौका देखकर फिर पूछोगी? क्योंकि ज्योतिषी जी की बात से ऐसा लगा कि कहीं कुछ 'गड़बड़' है भविष्य में—।"

"गड़बड़ है?" श्रीमती धर्मशीला के निर्मल चेहरे पर आतंक की छाया फैल गयी—"क्या कहा उन्होंने?"

"माँ, पाँच रुपये घूस, या प्रणामी जो भी कहो, लेकर भी कुछ खुलासा नहीं बतलाया। बोले कि मनुष्य का भविष्य अन्धकार और प्रकाश से मिल-कर बनता है। सो, अन्धकार और प्रकाश के कुप्रभाव से बचने के उपाय भी हैं···।"

श्रीमती धर्मशीला और श्रीहर्ष ने ज्योतिषीजी के इस 'पंचटकिया वचन' के गूढ़ार्थ को समझकर एक ही निष्कर्ष निकाला—निश्चय ही कहीं कुछ गड़बड़ी है भविष्य में, जिसको सुधारने का उपाय भी उन्होंने बतलाया होगा। और सम्भवतः वह उपाय महँगा है, इसलिए 'गृहकर्ता' की ऐसी प्रतिक्रिया ··।"

माता और पुत्र को समान रूप से भयभीत और उदास देखकर रामटहल ने भी मुँह लटका लिया। उसने बारी-बारी से 'माता और पुत्र' की ओर आँख में एक ही सवाल डालकर देखा। फिर धीमे स्वर में पूछा, "अच्छा, छोटे भैया! 'आसरित' का क्या मतलब होता है? आसरित?"

"आसरित या आसरहित?"

रामटहल ने सही शब्द को जीभ पर चढ़ाने की यथासाध्य चेष्टा करके कहा, "आसरीत!" रामटहल ने इधर-उधर देखकर कहा कि वह ज्योतिषी-जी को चाय और पान देने के लिए कमरे में गया था तो ज्योतिषी मालिक से कह रहे थे कि उनको अष्टग्रह का कोई डर नहीं। सुख-चैन ही मिलेगा। लेकिन संकट है आसरीत लोगों के सिर!

"ओ! आश्रित?"

श्रीहर्ष ने विशाल शब्द-कोश निकालकर धूल झाड़ते हुए शब्दार्थ ढूँढ़ना शुरू किया। श्रीमती धर्मशीला ईष्ट नाम का जाप करने लगीं और रामटहल की आँखें गोल होती गयीं।

पाँच मिनट के अथक तथा निःशब्द परिश्रम के बाद श्रीहर्ष को सफलता मिली—"हाँ। आश्रित?···आश्रित···सं ···ब्रैकेट में, किसी के सहारे··· स्थिर·· ठहरा, टिका हुआ···पु.—वह जो भरण-पोषण के लिए किसी पर अवलम्बित हो, स्त्री.—बच्चे, नौकर-चाकर, मन और ज्ञानेन्द्रिय···।"

ऐसा लगा, तीनों के बीच एक हथगोला आकर गिर पड़ा और जोरों का धड़ाका हुआ। जब तीनों को होश हुआ तो देखा कि हथगोला नहीं,

श्रीहर्ष के हाथ से विशाल शब्द-कोश छूटकर गिरा था···अब क्या हो? आश्रित का अर्थ—स्त्री-बच्चे-नौकर?···इस लपेट से न रामटहल बचकर निकल सकता है और न महाराज?···दुहाय बाबा नरसिंह!

भयातुर आश्रितों ने अन्तिम चेष्टा करके यह पता लगा लेना आवश्यक समझा कि आश्रितों के भीषण संकट के प्रतिकार के लिए गृहस्वामी ने कुछ किया है अथवा नहीं?

दोपहर को, भोजन के समय श्रीमती धर्मशीला आज प्रेमपूर्वक पंखा लेकर बैठी। पति के मुंह में प्रथम ग्रास पहुँचा तो श्रीमती धर्मशीला ने अपने मुंह की बात निकाली, "यदि भविष्यफल में कोई गड़बड़ी हो तो उसका उपाय भी बतलाया होगा? अपने अलावा अपने आ-आ-आ-स-र···।"

दिगो बाबू तिलमिला उठे, "महाराज ने आज यह···किस चीज की सब्जी है···यह तो जहर है···इतनी मिर्च···दिन-रात भविष्यफल जानने के लिए पागल रहती हो, मगर एक बार रसोईघर में झांककर नहीं देखती कि आज क्या···ओहो···मार डाला···।"

दिगो बाबू न भोजन कर सके, न क्रोध। चुपचाप सिसकारी लेते हुए कुल्ली-आचमन करने लगे।

चाय के समय भी 'चेष्टा' करने की चेष्टा विफल हुई, हालांकि चाय में मिर्च या नमक नहीं, चीनी पड़ी थी।

श्रीहर्ष ने रात्रि के भोजन के पहले इस संकट से उबरने का एक 'साइण्टिफिक उपाय' ढूंढ निकाला। और कोई चारा नहीं। शान्ति-कुटी के आश्रितों के समक्ष अपनी गुप्त योजना रखते हुए उसने खासतौर से अपनी माँ को समझाया, "यह तय है कि बाबूजी हम लोगों को संकट से उबारने के लिए कुछ नहीं करेंगे। हम उन्हें स्वार्थी नहीं कहते। किन्तु वे निर्दय अवश्य हैं। उपाय क्या करना होगा यह भी नहीं बतलाते? ऐसी अवस्था में अपनी बुद्धि से निकले हुए उपाय के द्वारा ही प्रतिकार कर सकते हैं हम। बाबूजी हर हालत में सुख-चैन से ही रहेंगे। उन पर कोई खतरा नहीं। संकट उनके आश्रितों के सिर है। हम हर हालत में उनके आश्रित ही रहेंगे। रहना पड़ेगा हमें—हमारी मजबूरी है। ऐसी अवस्था में 'सांप भी मरे और लाठी न टूटे'—जैसा कोई वैज्ञानिक तरीका अख्तियार करना होगा। यदि सभी

सहमत हो···।"

सर्वसम्मति से संत्रस्त आश्रितों ने तय किया कि वे आत्मरक्षार्थ गृहस्वामी का 'अहिंस विरोध' करेंगे, अर्थात् बचाव के लिए विरोध। वे आश्रित रहते हुए भी आश्रित न रहने का भाव दिखलायेंगे। चूँकि गृहस्वामी हर हालत में चैन से ही रहेंगे, उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा।···

इसके बाद श्रीहर्ष ने विस्तारपूर्वक अपने 'लाइन ऑफ एक्शन' का 'डायरेक्ट एक्शन' बतलाया।

तय हुआ कि कल सुबह सबसे पहले रामटहल को ही बगावत का झण्डा फहराना होगा, क्योंकि वही पहला आश्रित है, जिसका नाम लेकर गृहस्वामी सुबह में पहले पुकारते हैं। श्रीमती धर्मशीला की शंकाओं का समाधान और निवारण करते हुए श्रीहर्ष ने कहा, "चाय उन्हें जरूर मिलेगी लेकिन देर से मिलेगी। उन्हें कष्ट देने के लिए नहीं, अपने को कष्टमुक्त करने के लिए हम विरोध करेंगे।···विरोध शुरू करने के पहले सभी अपने-अपने कलेजे को टटोल लें।"

रामटहल को कलेजा नहीं टटोलना पड़ा।

सुबह की पहली पुकार पर उसके मुँह में पहला जवाब निकल ही रहा था कि उसने कसकर दाँतों का ब्रेक लगा दिया जीभ पर।···पचीस साल की आदत!

तीन बार पुकारने पर भी रामटहल ने कोई जवाब नहीं दिया। दिनो बाबू को तनिक अचरज हुआ। उन्होंने करवट लेकर देखा, रामटहल सामने बरामदे पर लेटा हुआ है, अपनी जगह पर। इस बार उन्होंने गला खोलकर पुकारा, "रामटहल!"

"भोर-हि-भोर रामटहल-रामटहल काहे चिल्ला रहे हैं! बोलिए न, क्या कहना है?"

दिनो बाबू को विश्वास हो गया कि वे खुद नींद में हैं, इसलिए चुप हो गये। लेकिन रामटहल चुप नहीं रहा। उसने कहा, "चाय के लिए महाराज को पुकारिए। सुनते हैं?"

दिनो बाबू स्वप्नलोक में फिर 'शान्ति-कुटी' के कमरे में उतरे। उधर रामटहल हथेली पर खैनी तम्बाकू रगड़ता हुआ, सन् मीग के एक भूले हुए

'मुराजी-गीत' की पंक्ति याद कर रहा था। कलेजे को मजबूत बनाये रखने के लिए उसने गीत शुरू किया, जोर से—'कि बन्दर की तरह बन मे 'विटिम' को नचा देंगे, बन्दर की तरह'''।'

दिग्विजय बाबू को तनिक भी सन्देह नहीं रहा कि रामटहल ने अब गाँजा पीना शुरू कर दिया है। अपमान, क्रोध, दुःख, ग्लानि के सम्मिलित और अकस्मात् आक्रमण से उनकी देह झुलस उठी। वे उठे और लाठी लेकर झपटे। रामटहल पहले से ही भागने को तैयार बैठा था। वह भागा, लेकिन सड़क पार नही कर सका। बीच सडक पर ही घेरकर दिगो बाबू ने उसे पीटना शुरू किया। गालियाँ सुनकर मारे मुहल्ले के लोग जाग पड़े।'''लोगों ने अपनी आँखो से देखा और पहचाना, दिगो बाबू ही हैं।

आसपास एकत्रित लोगों को चेतावनी और तमाशा दिखाने की धमकी देकर, गमलों को पैरों से गिराने के बाद वे अपने कमरे मे चले गये। उनको यह समझने मे देरी नहीं लगी कि पड़ोसियो ने उनके पुराने नौकर को बहकाया है। वे इसका बदला चुकाने का रास्ता खोजने लगे। तब तक महाराज हाथ मे 'आश्रितों का ऐतिहासिक स्मरण-पत्र' लेकर कमरे मे हाजिर हो चुका था।

दिगो बाबू ने पढ़ा—"आपने अकारण ही अपने एक विश्वासी, वफादार एवं असहाय आश्रित को अन्यायपूर्वक पीटा है। हम इसका घोर विरोध करते हैं। हमें खेद है कि हम सभी आपके इस दुर्व्यवहार मे दुःखी होने को बाध्य हैं। अतः आपकी घोर निन्दा करते हैं। भविष्य मे'''।"

दिगो बाबू आगे नही पढ़ सके, क्योंकि तब तक 'छोटी कोठी' में एक पुराने किन्तु काफी गरम गीत का रेकार्ड बजने लगा था—हो पापी, जोबना का देखो बहार'''हो पापी—हो पापी'''!

श्रीहर्ष ने विरोध के लिए, ऐसे ही गीतों के रेकार्ड, नंगी तस्वीरोंवाली तथाकथित-स्वास्थ्यपूर्ण किताबें, खुलेआम धूम्रपान और बन्द आवारा दोस्तों के साथ ताश खेलने का कार्यक्रम बनाया। उसने सभी आश्रितों के लिए अलग-अलग 'एक्शन' तय करके समझा दिया था।

श्रीहर्ष ने माँ को याद दिलाकर कहा था, "गलती से पैर छूकर प्रणाम मत कर बैठना। भक्ति और पूजा, बाबूजी की तस्वीर की करो। हर्ज नहीं।

लेकिन बाबूजी के साथ बुरा बर्ताव करके ही संकट को टाल सकोगी।"

तीन दिन तक, दिन-रात सभी आश्रितों ने ईमानदारी और दृढ़ता से अपना विरोध जारी रखा। गृहस्वामी को चिढ़ाने के लिए नित नये उपाय सोचे गये, प्रयुक्त हुए। मगर दिग्गी बाबू ने मौनव्रत धारण करके 'गीता रहस्य' में अपने को इस तरह डाल दिया कि 'मेन-स्विच' ऑफ कर देने और ज़ोर से रेडियो खोलने पर भी उससे बाहर नहीं निकले।...रामटहल ने गन्दा लँगोट पसारकर उनकी क्रोधाग्नि को पुनः-पुनः भड़काने की चेष्टा की, किन्तु व्यर्थ।

श्रीमती भवानी को अपने देवता-तुल्य ससुर की सेवा करने का सुअवसर अब तक नहीं मिला था। श्रीमती धर्मशीला किसी कारणवश अपनी पुत्रवधू पर मन-ही-मन अप्रसन्न रहती थी। इसलिए पति के सामने सदा-कदा तथा कभी-कभी सर्वदा उसकी बुराई ही करती थी।

इस बार श्रीमती भवानी ने अपने गुणों से दिग्विजय बाबू को दो दिन में ही मुग्ध कर लिया। उनके मन से 'पुत्रहीन' होने का एकमात्र दुःख हमेशा के लिए दूर हो गया।

उस दिन श्रीपार्थ ने फैसला सुनाने के लहजे में अपने पिता के सभी विद्रोही आश्रितों को सुना दिया—"अब तुम लोग पिताजी के आश्रित नहीं रहे। अब किसी संकट की आशंका नहीं। पिताजी अब मेरे आश्रित होकर दुर्गापुर में रहेंगे, क्योंकि ज्योतिषी ने यह भी बतलाया है कि अब उन्हें किसी के आश्रय में रहना चाहिए।

श्रीपार्थ ने अपनी माता को 'सोशल-वर्क' करने, श्रीहर्ष को 'घरेलू नौकरों की यूनियन' बनाने, रामटहल को मूँगफली बेचने तथा महाराज को गंगाजी के घाट पर भिक्षाटन करने की उचित और लाभदायक सलाह देकर, श्रीमती भवानी को दुर्गापुर लौटने की तैयारी तुरन्त करने का आदेश दिया।

दिग्विजय बाबू बालकों की तरह प्रसन्न और उत्साहित होकर अपना सामान सहेज रहे थे कि आँगन में कोलाहल सुनायी पड़ा। श्रीमती धर्मशीला क्रोध से काँपती हुई महाराज से पूछ रही थीं, 'बोलो! तुम जान-बूझकर

यह सब कर रहे थे ? आखिर क्यों ? हम लोगों का सुख तुमसे देखा नही जाता था ?···ऐसे में सारे परिवार के लोग पागल नही होंगे भला ?"

श्रीपार्थ ने यात्रा के समय इस कलह का कारण जानना चाहा। श्रीमती धर्मशीला बोली, "बेटा, तुम हाकिम हो। तुम्ही इस बात का इन्साफ करो। इस बार तुम्हारे बाबूजी ने गांव से 'पाट-साग' का बीज मँगवाया था। महाराज ने बोते समय चुटकी-भर भंग का बीज मिला दिया था। पिछले पाँच-सात दिनों से नौकरानी भग के पौधों सहित साग ले आती थी और महाराज आँख-मूंदकर कड़ाही में डाल देता।·· ऐसे में घर-भर के लोग लोग पागल क्यों नही होंगे ?"

रामटहल ने कहा, "अब समझा कि मेरा माथा हमेशा क्यों उस तरह चकराता था।"

श्रीहर्ष बोला, "रामटहल, अभी तुरन्त आबकारी पुलिस को बुला लाओ।"

महाराज हाथ जोड़कर गिडगिडाने लगा, "मालिक—बड़े भैया—छोटे भैया—मालकिन—इस बार माफ़ कर दीजिए। 'भविष्य' में कभी ऐसी गलती नही होगी। दुहाई···।"

'संकट' का सही कारण ढूँढ निकालने के बाद श्रीमती धर्मशीला एक गिलास ठण्डा पानी लेकर अपने पति के कमरे में चली गयी।

[नयी कहानियाँ / सितम्बर 1963]

अभिनय

छन्दा ने जिस दिन घर-भर के लोगों के छप्पर-फोड़ ठहाके के बीच मुझे 'दादू' कहकर सम्बोधित किया, मैं थोड़ा अप्रतिभ हुआ था। मेरे (अकाल) परिपक्व केश के कारण ही छन्दा (जिसकी माँ मुझे देवर मानती है और जिसकी दादी मेरा नाम लेकर पुकारती है) ने मुझे 'दादू' यानी 'बाबा' कहा था। मुझे 'केशव-केशन' की याद आयी थी और मैं मन्द-मन्द सुर में दोहा पढ़ने लगा था।

सबसे पहले छन्दा की दादी (जिसे मैं जेठी माँ अर्थात् बड़ी चाची कहता हूँ) ने 'दोहा' का अर्थ पूछा था। और मतलब समझकर छन्दा की छोटी चाची (जो असाधारण सुन्दरी है) ने मुझे ढाढ़स बँधाया था, "किन्तु''' बाग्ला माने हम लोगों का दादू लोग खूब मौज में रहता है। जानते हैं न?"

छन्दा की सदा बीमार माँ के पीले मुखड़े पर भी हँसी की रेखा फूटी थी, "दादू और पोती में खुलकर दिल्लगी चलती है। खूब फस्टीनस्टी''।"

छन्दा की छोटी चाची ने आँखों को नचाते हुए कहा था, "अब आप भी छन्दा को 'गिन्नी' बोल के डाकिये। गिन्नी का माने बूझते हैं? गृहिणी।"

और, इस बात पर फिर एक बार सामूहिक ठहाका लगा था।

छन्दा की छोटी चाची (जो राजकपूर का नाम सुनते ही आइसक्रीम की तरह गल जाती है!) बात करने का ढंग जानती है। (मेरे एक निन्दक

पड़ोसी मेरी निन्दा करते समय लोगों से कहते है कि छन्दा की छोटी चाची से बातें करने के लिए मैं दफ्तर से कैजुअल-लीव ले लिया करता हूँ !) वह सामनेवाली कुर्सी पर आकर बैठ गयी और दुनिया-भर के दादुओ की कीर्ति कथा सुनाने लगी, "कोलकाता मे हमारा भी एक ऐसा ही दादू था···।"

"ऐमा ही माफिक माने ?"

"आपका ही माफिक। पातानो-दादू ?"

"पातानो-दादू ?"

"मुंहबोला-दादू।"

छन्दा का छोटा भाई सन्तू, जो अब तक चुप था, बोल उठा, "तब ठाम्मा (दादी) से काका बाबू का···कौन···सम्बन्ध···"

बेचारा अपनी बात पूरी भी नही कर पाया था कि हँसी का हुल्लड़ शुरू हुआ। और सबसे ऊपर छन्दा की मयूरकण्ठी-हँसी। हँसी नहीं, पिह-कारी। सारे गोलमार्केट मे उसकी हँसी कुछ देर तक मँडराती रहती है। पास-पड़ोस के लोगों ने छन्दा के फ्लैट को, इसी उन्मुक्त-हँसी के कारण 'नाइट-क्लब' का नाम दे दिया है।

उस रात को (छन्दा का दादू बनकर) लौटते समय बत्तीस नम्बर के (सीदा-मादा दीखनेवाला नम्बर एक शैतान) सज्जन ने कपट-नम्रता से पूछा था, "क्यो अरुण बाबू ! पच्चीस नम्बर में किसी डिरामा-उरामा का रिहल-सल-उहलसल चल रहा है क्या ?"

मैंने कहा था, "जी हाँ।"

बत्तीस नम्बर मुंह बा कर मुझे थोड़ी देर तक देखता रहा था। फिर पूछा था, "कौन नाटक ?"

"दादू चरित।"

छन्दा रेलवे-कण्ट्राक्टर बी. घोष की बड़ी बेटी है। साँवरी-सुन्दरी और चंचल लड़की है। नाचती है, गाती है, अभिनय करती है। सौभाग्यवश, अब तक कुमारी है। मेरा दृढ़-विश्वास है कि किसी कण्ट्राक्टर की सन्तान विवाह के मामले मे और प्रेम के व्यापार में धोखा नही खा सकती। दुधमुँही बच्ची-जैसी भोली-भाली छन्दा 'लोलिता' पढ़ चुकी है। मेरे-जैसे अनेक मूढ लोगों को नचा चुकी है। फिर भी, "सबकुछ जानते हुए भी, लोग उसकी मीठी

बोली सुनकर भ्रम में पड़ जाते हैं।

मैं सोचने लगा, इतने दिनों के बाद आखिर छन्दा ने मुझसे यह नया रिश्ता क्यों जोड़ा ? दादू और पोती में खुल्लम-खुली दिल्लगी चलती है।''' मेरे मुँह से 'गिन्नी' सम्बोधन सुनने के लिए अथवा'''अथवा'''?

यों मुँहबोले-काका की हैसियत से भी मैं छन्दा से हल्की-फुल्की दिल्लगी किया करता था। छन्दा के राही-प्रेमी (रिक्शे के पीछे सायकिल भगाकर 'होगा कि नहीं' पूछनेवाले) के बारे में पूछता था। जिस लड़के के बाप ने छन्दा की तस्वीर मँगवायी है, उसकी मूँछों की ऐंठन देखकर डरेगी तो नहीं छन्दा ? ''यह गीत और नाच किस काम आयेगा'''सुहाग की रात में घुँघरू बाँधकर नाचेगी छन्दा ? आदि-आदि।

फिर, इस नये रिश्ते की क्या जरूरत थी ? छन्दा के (बाप के) बैठक में जिस सोफा पर मैं पहली बार बैठा था, उसी पर आज तक बैठता आया हूँ। कल भी उसी सोफे पर बैठूँगा। लेकिन छन्दा मुझे दादू कहेगी।

दूसरे दिन फ्लैट में पैर रखते ही छन्दा ने स्वागत किया, "कि बूढ़ो ?'''क्यों बुड्ढे, दाँत में दर्द-वर्द तो नहीं। आज चने की घुँघनी बनी है।"

मैं हठात् अधेड़ हो गया। मुझे लगा, मेरे चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी हैं और दमे से परेशान हूँ, कि गठिया के मारे मेरे घुटनों में रात-भर दर्द था, मगर किसी ने गरम पानी का थैला नहीं दिया। मैंने कराहते हुए जवाब दिया, "दर्द की क्या पूछती हो गिन्नी। कहाँ नहीं दर्द है ?"

छन्दा की छोटी चाची देर से आयी, मगर दुरुस्त होकर आयी। बोली, "किन्तु दादू होने में खतरा भी है।"

"कैसा खतरा ?"

"लड़कियों के नाबालिग-प्रेमी लोग दादुओं से बहुत नाराज रहते हैं। हाथ में छड़ी लेकर सुबह-शाम पोती-नतनी की रखवाली करनेवाले दादुओं को वे फूटी नजर भी नहीं देखना चाहते। अतएव, हमेशा होशियार रहियेगा।"

उधर छन्दा के छोटे भाई ने गाना शुरू कर दिया था—"मैं का करूँ राम मुझे बुड्ढा मिल गया'''।"

तीसरे दिन मालूम हुआ कि धनबाद से एक कोयला खदान के मालिक का बड़ा बेटा छन्दा को देखने आ रहा है। मैंने कहा, "गिन्नी ? आखिर इस काला-हीरा की ही गले में डालेगी ?"

छन्दा लजानेवाली लड़की नहीं। बोली, "सुनती है काकी ? मारे डाह के जल-भुनकर भुर्ता हुआ जा रहा है। बुड्ढा !"

मैं एक लम्बी साँस लेकर उदास हो गया।

छन्दा की छोटी चाची चाय लेकर आयी (आज तक चाय लाने का काम किसी और ने नहीं किया) और बोली, "छन्दा ने आपके लिए···।"

तब तक छन्दा, हाथ में एक साप्ताहिक पत्रिका लेकर मेरे पास आ गयी। बोली, "आज ही कार्ड लिखकर वी. पी. मँगा लो दादू। पढ़कर देखो, लिखा है केश काले न हों तो दाम वापस।"

मैंने तत्परता से कहा, "दया करके इसकी कटिंग मुझे दे दो।···हाय। दुनिया में हमदर्दों की कमी नहीं।···क्या लिखा है ? जवानी में बुढ़ापा क्यों भोग रहे हैं।···वाह। आज ही लिख देता हूँ। काला-हीरा से मुकाबला है, खेल नहीं।"

लगातार चार महीने तक दादू की भूमिका अदा करने के बावजूद, मुझसे गलती हो ही जाती। तब, छन्दा की छोटी चाची अथवा माँ या दादी मुझे टोककर सुधारती—"ऐसा नहीं, इस तरह···।"

किन्तु, छन्दा कभी कोई गलती नहीं करती। आध-दर्जन नाती-पोतों-वाली बूढ़ी की तरह वह बोलती-बतियाती। मेरी गलतियों (बेवकूफियों) पर तानें देती हुई कहती, "तुम्हारे मन में भी मारी-जवान चोर है बुड्ढे।"

एक दिन छन्दा ने मुझसे धीमे स्वर में कहा, "दादू, तुमने कुछ मार्क किया है ? तुम्हारे आते ही दादी सिर पर कपड़ा सरका लेती है।"

"सचमुच ?"

छन्दा की छोटी चाची दाँतों-तले जीभ दबाकर हँसी। फिर, फिसफिसा-कर बोली, "हाँ, कल वह रही थी कि बेचारे अरुण को छन्दा बहुत दिक करती है। और छन्दा ने तुरत उल्टा जवाब दिया—तो, तुम अपने बूढ़े को सँभालती क्यों नहीं।···इस पर माँ हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी।"

मैंने छन्दा से पूछा, "क्यों बूढ़ी ? मुझे धकेल रही हो ?"

छन्दा हँसती रही। बोली, "और, इधर दादी आपसे बहुत कम बातें करती है, यह आपने लक्ष्य किया है? आते ही अचानक गम्भीर हो जाती है।"

छन्दा की दादी ने पूजा-घर से ही कहा, "छन्दा, पूछो तो आश्रम में इस बार पूजा होगी या नहीं?"

"तू लाज से गड़ी क्यों जा रही है?"

"अब मार खायेगी तू, हाँ···।"

"···चिढ़ी है।···बात लगी है?" छन्दा टेबुल पीटकर हँसने लगी।

तो, छन्दा ने मेरे मुँह से 'गिन्नी' सुनने के लिए नहीं, मुझसे एक 'मधुर सम्बन्ध' के लिए नहीं, अपनी दादी को चिढ़ाने के लिए ही मुझे दादू कहना शुरू किया है? अब तो स्पष्ट शब्दों में वह अपनी दादी की भारी-भरकम देह और मेरी दुबली-पतली काया की जोड़ी लगा देती है। उस दिन एक व्यंग्य-चित्र दिखलाकर बोली, "आप लोगों की युगल-जोड़ी···।"

छन्दा की दादी विधवा है। मांस-मछली नहीं खाती। पान का नशा है—मगर मुँह में दाँत नहीं। इसलिए पान के बीड़े को कूटकर खाती है। छन्दा ने मुझसे एक दिन यह कर्म भी करवाया और उसकी दादी हँसती रही।

उठते समय, उस दिन फिर हो-हल्ला शुरू हुआ। छन्दा की माँ से उसकी दादी ने चुपके से कहा कि अरुण को कल रात यहीं खाने को कहो···, छन्दा ने सुना और ले उड़ी, "सिर्फ खाने का निमन्त्रण?"

छन्दा की दादी के हाथ में जादू है, सुन रखा था। अचानक निमन्त्रण पाकर मैंने पूछा, "लेकिन मांस-मछली तो···।"

छन्दा बोली, "आपके लिए सब नियम-कानून तोड़ सकती है—मांस-मछली छूने की क्या बात?"

दूसरे दिन, सुबह ही सन्तू एक लिखित निमन्त्रण-पत्र दे गया—"एक बार आकर देख जाइए कि आपकी 'मोटकी' दिगम्बरी रसोईघर में किस तरह पसीने से नहा गयी है।···इसी को कहते हैं प-रे-म।"

मैं नहीं गया। शाम को भी अपने समय पर नहीं गया। तय किया, ठीक

भोजन के समय जाऊँगा।

शाम को मैदान का एक चक्कर लगाकर लौट रहा था। हुथुआ-मार्केट के सामने आते ही पान खाने को मन ललच पड़ा।

जाफरानी-पत्ती मुँह मे घुलाते हुए मैंने पूछा, "यह कैसी पत्ती है?"

"बाबूजी, वाराणसी-पत्ती है। आपने तो पान छोड ही दिया।" विश्वनाथ ने कहा।

"क्या कीमत है?"

"ढाई रुपये।"

पॉकिट टटोलकर देखा, पचास पैसे कम पड़ेंगे। विश्वनाथ ने कहा, "कोई बात नही।"

मैं जान-बूझकर ही देर से छन्दा के फ्लैट गया। सुना, दादी निराश होकर सो गयी हैं। निराश ही नही, नाराज होकर भी।

छन्दा बोली, "बाबा! अब मैं कुछ नही बोलूंगी। दादी का कहना है कि मेरे ही कारण, आप ।"

मेरी बोली सुनकर छन्दा की दादी कपडे सँभालती हुई आयी। मैंने देरी के लिए एक झूठी सफाई दी। वह बोली, "सभी चीजें ठण्डी हो गयी होंगी।"

छन्दा कुछ कहना चाहती थी। किन्तु, हाथो मे मुँह ढँककर अन्दर चली गयी। छन्दा की छोटी चाची रसोईघर की ओर गयी। छन्दा की दादी बैठी, "मुँह-हाथ धो चुके हो?"

मैंने पॉकिट मे जर्दा की डिबिया निकालकर बूढ़ी की ओर बढ़ाया।

वह मद्धिम आवाज मे बोली, "की जिनिस?"

"वाराणसी-जाफरानी जर्दा।"

बूढ़ी ने डिबिया को खोलकर सूँघा। मुस्कराकर चुपचाप आँचल में बाँधने लगी, "क्या जरूरत थी? कितना दाम लिया?"

"अच्छी चीज है।" मैंने कहा।

"गन्ध तो बहुत अच्छी है।" बूढ़ी ने आँचल को एक बार सूँघकर छिपा लिया।

कि अचानक छन्दा, मन्नू और छन्दा की चाची ने एक साथ कमरे मे

प्रवेश किया। छन्दा ने पूछा, "क्यों ? क्या घुमुर-फुसुर हो रहा है ?"

सन्तू बोला, "की मिष्ठी गन्धो।"

"यह खुशबू कैसी है बूड्ढे ?" छन्दा ने मुझसे पूछा।

मैंने छन्दा की दादी की ओर देखा। लाज के मारे बूढ़ी का चेहरा लाल हो गया था।

"क्यों दादी ? आँचल में क्या छिपाया···देखूँ···यह···क्या···?"

"कुछ नहीं······जर्दा·····।"

"किसने दिया ?"

अब मेरी देह काँपने लगी। कान गर्म हो गये। लाज से मेरी आँखें झुक गयीं और पच्चीस नम्बर फ्लैट में एक बार फिर छप्पर-फोड़ ठहाका गूँजा।

छन्दा की छोटी चाची ने कहा, "ठाकुरपो (देवरजी) आज एकदम सही···ओके···। जरा भी गलती नहीं की आपने।···ठीक, दादू। हू-ब-हू !"

छन्दा डाँट रही थी दादी को, "ऐं ? तुम डूब-डूबकर पानी पीती थी बूढ़ी ?"

सन्तू बोला, "सिंकिंग-सिंकिंग-ड्रिंकिंग वाटर···?"

[ज्योत्स्ना / नवम्बर 1965]

तब शुभ नामे

एक-एक कर बहुत सारे शब्दो को 'नकारता' जा रहा हूँ, 'नकार' दिया है। नेति-नेति ! माता, मातृभूमि, जन्म-भूमि, देश, राष्ट्र, देशभक्ति-जैसे चालू शब्दो की अब मुझे जरूरत नहीं होती। माँ की 'ममता' और मातृभूमि पर मर-मिटने के सवाद और गीतो की बातें अब सिर्फ बम्बई और मद्रास के फिल्म प्रोड्यूशर ही करते हैं। गाँव-समाज से नेह-छोह तोड़े दो दशक हो गये। अब कभी अपने गाँव की याद नही आती। गाँव के 'चौपाल' और 'गोहाल' और 'अलाव' के किस्से भूल चुका हूँ। कोसी कछार की हवा मुझे समय-असमय निमन्त्रण नही देती और न दूर किसी गाँव के ताड या खजूर या नारियल के पेड़ ही इशारो से मुझे बुलाते हैं। 'कमलदह' और 'रानी-पोखर' के पुरइन-फूलो के जंगल मे भूला 'मन-भमरा' अब गुन-गुन नही करता··· धीरे-से आना बगियन मे रे भौमरा, धीरे-से आना बगियन मे···पकज मल्लिक का यह गीत अब मन मे गुदगुदी पैदा नही कर पाता।

जिस गाँव में मेरा जन्म हुआ, उसका नाम भी चेष्टा करके भूल गया हूँ। किन्तु इस कटिहार जक्शन रेलवे-स्टेशन के मोह को अब भी नही काट सका हूँ। गाँव छोडा, जिला छोड़ा, प्रान्त छोड़ा, मगर हर पाँच या सात वर्षों के बाद कोई-न-कोई बहाना बनाकर कटिहार चला आता हूँ। नम्बर दो ओवरब्रिज पर आकर घण्टो खडा होकर चारो ओर देखता हूँ।

···पहली बार, गंगा-स्नान को जाते समय, बचपन मे माँ के साथ मैं इस ओवरब्रिज के इसी स्थान पर आकर खड़ा हुआ था। माँ ने उत्तर-पूर्व की ओर हाथ उठाकर दिखलाते हुए कहा था—'वह है 'कामच्छा-कमिच्छा' जानेवाली गाडी, पच्छिम की ओर वह गाडी काशीजी-प्रयागजी तक जायेगी

और दक्षिणवाली वह लाइन गंगा के मनिहारी घाट तक चली गयी है।'

तब से आज तक न जाने कितनी बार इस स्थान पर आकर खड़ा हुआ हूँ। तब से अब तक इस रेलवे के कितने नाम बदल-बदलकर पड़े·· ई. बी. रेलवे, बी. ए. रेलवे, ए. बी. रेलवे, ओ. टी. रेलवे और नॉर्थ-ईस्ट फ्रण्टियर रेलवे; किन्तु अब तक मैं इसे ई. बी. रेलवे ही समझता हूँ। यहाँ आकर मैं दिशाहारा-सा हो जाता हूँ, अर्थात् पूरब-पच्छिम, उत्तर-दक्षिण के बदले कामरूप-कमिच्छ की ओर, काशी-प्रयाग की ओर और गंगा की ओर के रूप में दिशाओं का अनुभव करता हूँ। सात वर्षों के बाद आया हूँ, लेकिन लगता है पिछले सप्ताह की बात है! कभी-कभी तो सिर्फ एक दिन के लिए ही दौड़ा आया एकदम सीधे बम्बई से! रेलवे के एक रिटायर्ड अफसर से सुना था कि प्लेटफार्म के इस छोर से उस छोर तक चक्कर लगाकर गाड़ी के यात्रियों को देखना एक रोग है और हर रेलवे स्टेशन के आसपास रहनेवाले कुछ लोग इस रोग के शिकार हो जाते हैं। और, इस रोग का सम्बन्ध सीधे यौन-विकार से है।

एक किस्म का एक और रोग है, चलती हुई गाड़ी से सम्भोग-सुख प्राप्त करने की लालसा। सम्भव है, कटिहार जंक्शन से मेरा यह लगाव भी वैसा ही रोग हो, नहीं तो क्यों इस तरह बेदार होकर दौड़ा आता हूँ? काशी, इलाहाबाद, पटना, कलकत्ता आदि से लौटते समय, दूर से ही कटिहार स्टेशन का टॉवर देखकर लगता था, कटिहार जंक्शन सिर ऊँचा किये, मुस्कुराता हुआ हमें देख रहा है।

इस बार, अब तक कटिहार जंक्शन ने मुझे नहीं पहचाना है। घने कोहरे में टॉवर छुपा हुआ था। ओवरब्रिज पर आते ही लगा, प्रतीक्षालय के बूढ़े चौकीदार की तरह पोपली हँसी हँसकर किसी ने कहा—'इस बार बहुत दिनों के बाद इधर आना हुआ, शायद···!' दो नम्बर प्लेटफार्म पर उतरते ही पियक्कड़ पगलू जमादार हड़बड़ाकर उठ बैठता है—बाबू, मीना बाजार आनेवाला है फिर क्या? मीना बाजार! पैंतीस साल पहले मीना बाजार देखने आया था। पूजा बाजार स्पेशल! कलकत्ते से आती थी वह गाड़ी। कलकत्ते की कई प्रसिद्ध कम्पनियाँ अपनी दूकानें लेकर आती थीं···ज्वेलर्स, परफ्यूमर्स, बन्दूकवाले और बाग बाजार के रसगुल्लेवाले। पूरे प्लेटफार्म पर

दिन-भर मेला लगा रहता। रात मे प्लेटफार्म पर ही मुफ्त सिनेमा दिखलाया जाता। उस बार 'स्ट्रीट सिंगर' फिल्म दिखलायी गयी थी। दुर्गोत्सव के पहले एक दिन का अतिरिक्त उत्सव। पगलू जमादार से पहली बार मीना बाजार में ही परिचय हुआ था। एल. एस. डी. खाने के बाद लोग तरह-तरह के अलौकिक दृश्य देखते हैं, वैसा ही कुछ होता है यहाँ आकर।

···अभी तीन नम्बर प्लेटफार्म पर पहुँचते ही पोर्टर कामरूप-कमिच्छा की ओर से आनेवाली गाड़ी का सिगनल डाउन कर देगा। सारे प्लेटफार्म की रोशनियाँ बुझा दी जायेंगी। दफ्तरो और रेल के कम्पार्टमेण्ट की रोशनियो के गिर्द कोलतार पोत दिया जायेगा। घुप्प अँधेरे में सिर्फ हरी और लाल रोशनियाँ टिमटिमाती-सी दिखायी पड़ने लगेंगी। दीवारो पर, पोस्टरो मे चेतावनियाँ चिपक जायेंगी ' नम्बर एक प्लेटफार्म पर मिलेटरी-स्पेशल आकर रुकेगी। मित्र-पक्ष के सिपाही···न जाने किस-किस मुल्क के ' कोहिमा, दीमापुर, इम्फाल, डिब्रूगढ आदि कई नाम हवा मे फिस-फिसाकर लिये जायेंगे। इसके बाद उधर से आयेगी इवैक्वी-स्पेशल, बर्मा, रगून को खाली करके, पैदल ही नदी-पहाड़ पार करके आनेवाले प्रवासी भारतीयों को लेकर! रामकृष्ण मिशन के सन्यासियो के साथ, स्वयंसेवक का बिल्ला लगाकर, प्लेटफार्म पर पहले से ही तैयार है···गाड़ियाँ चीखती हुई आती है। रोती हुई, सिर धुनती हुई। हर कम्पार्टमेण्ट मे पीले-पीले औरत-मर्द-बच्चे-बूढ़े ठुँसे हुए। अस्थि-पजर मात्र शेष देह पिंजर, कोटरो मे धँसी आँखें! अधमरे लोगो को लेकर गाड़ी आयी है। गाड़ी के रुकते ही हर कम्पार्टमेण्ट से नरकंकालो की टोलियाँ उतरती हैं·· न हँसती है, न रोती हैं। अचानक वे एक साथ चिल्लाने लगते हैं, पागलों की तरह वे इधर-उधर दौड़ते हैं। ठोकर खाकर गिरते हैं। हँसते हैं, रोते हैं। नंगे-अधनंगे, चिथ्थी-चिथ्थी चीथड़ों मे लिपटे लोग हवा मे हाथ नचा-नचाकर पता नही क्या-क्या बोल रहे है। पगलू जमादार, मृतक-सत्कार समिति का बैज लगाये, कन्धे पर स्ट्रेचर लेकर मेरी ओर आता है—बाबू, मीनाबाजार हो आया है··· समझिये! होमियोपैथी दवा की गोलियाँ खाकर एक पीली लड़की मुझे बहुत देर तक घूरती रहती है···फिर उससे पूछती है—बरमचारी, मैं क्या

सचमुच जिन्दा हूँ ? इतना कहकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ती है। उसकी पीली दन्त पंक्तियों मे जड़ा सोना कितना गन्दा है। इवैक्वी ''इवैक्वी'' धनपाल को छोडकर भागनेवाले।

बीहड रास्ते में परिवार के सदस्यो को खोकर, अपनी जान किसी तरह बचाकर आसाम तक पहुँचनेवाले भाग्यशालियो के दल की वह पीली लडकी कैम्प अस्पताल मे दम तोड़ते समय मुझे अपने पास बुलाती है। इशारे से अपने गले के लॉकेट को खोलने के लिए कहती है। एक काले डोरे मे लटकती सिस्टर निवेदिता की तस्वीर, दूसरी ओर महीन अक्षरो मे कुछ लिखा हुआ है। मृतक-सत्कार समिति का एक स्वयसेवक मेरे हाथ से लॉकेट लेते हुए कहता है—अरे, यह तो रोल्डगोल्ड है ! यदि मृतक-सत्कार समितिवाले कुछ देर बाद आते, तो मैं उस लडकी की लाश के पास बैठकर दो बूँद आँसू जरूर गिराता'''आँखो मे अटके आँसुओं की उन बूँदों को अब तक आँखो मे ही सहेजकर रखना आसान नही।

पगलू जमादार हँसता है—आज कुछ भी हाथ नही लगा ! अरे बाबू, उस दिन की उस पीली लड़की के दाँतो मे असली सोना था, असली ! पोर्टर अब घण्टा बजाकर आसाम-लखनऊ मेल आने की सूचना देता है। लाउड-स्पीकर पर ऊँघती हुई आवाज मे ऐलान किया जाता है : आसाम-लखनऊ मेल ट्रेन पाँच नम्बर प्लेटफार्म पर आ रही है। जिन यात्रियो को सोनपुर, छपरा, गोरखपुर होते हुए लखनऊ को ओर जाना है'''सभी बुझी हुई रोश-नियाँ जल पड़ती हैं एक साथ।

भोर का तारा आकाश पर चमक उठा। उषा की लाली प्लेटफार्म पर छा गयी है और ऐसे ही समय पाँच नम्बर प्लेटफार्म पर पार्वतीपुर पैसेन्जर 'इन' करती है'''रिफ्यूजी'''रिफ्यूजी'' फिर वही लोग, वही नरक काण्ड और फिर वही पीली लड़की ? इस बार वह मुझे देखते ही पहचान लेती है। मैं उसके पास जाता हूँ ? वह मुझे दोनो हाथो से जकडकर कहती है—तुमी आमा के छेडे को थाय पालियेछेले ? कहाँ भाग गये थे तुम मुझे अकेली छोड-कर ? उन्होंने मेरे दाँत से असली सोने का पत्तर निकाल लिया ! हाय, हाय ! पगलू जमादार आकर ढाढस बँधाता है—अरे, बबुनी, धरम बच गया, यही बहुत है'''! मृतक-सत्कार समितिवाले इस बार जबरदस्ती उस लड़की को

स्ट्रेचर पर सुलाकर ले गये। वह चीखती रही। मुझे नाम लेकर पुकारती रही। मैं कुछ न बोल सका।

उस लड़की की देह आग की तरह सुलग रही थी। हर कम्पार्टमेण्ट में काननवाला, यूथिका राय, अंगूरवाला, भारती-यमुना, मंजु एक स्वर से नजरुल गीत गाने लगी: हो ओ धरमे ते धीर होओ करमे ते बीर होओ उन्नत सिर नाहि भय, मैं मेडिकल अफसर को समझा रहा हूँ कि एक लड़की को जीवित ही जलाने को ले गये हैं लोग। डॉक्टर मुझे समझाता है कि सती प्रथा का अन्त ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और राममोहन राय के युग में ही हो गया है। पगलू जमादार ने आकर मुझे धीरे-से कहा—इस बार उसके गले में असली सोने का लॉकेट था और उसमें आपकी तस्वीर लगी थी, बाबू!

लाउडस्पीकर पर फिर कोई ऐलान शुरू हुआ। फिर एक गाड़ी रिफ्यूजी! रिफ्यूजी-स्पेशल। हठात् साइरन बजने लगा। रोशनियाँ फिर एक-एक कर बुझने लगी। तीन नम्बर प्लेटफार्म पर फिर अन्धकार छा गया। लाल और हरी रोशनियाँ आकाश में टिमटिमाने लगी। कामरूप मेल आकर अन्धकार में खड़ी हो गयी। हर कम्पार्टमेण्ट में कच्ची उम्र के जवान हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख···उनके चेहरे गुस्से से तमतमाये हुए हैं। चीखती, धड़धड़ाती आती है आसाम की ओर से एक के बाद दूसरी गाड़ी···घायलों, मृतकों और अधमरे लोगों को लेकर! आसाम, गोहाटी, डिब्रूगढ़ से भागे हुए इवैक्वी··इवैक्वी···इस बार वह पीली लड़की अपने चेहरे पर घूँघट डालकर आयी है···सेठानी की तरह। वह मेरे पास आकर धीमे-से बोली—मास्टरजी, मेरे साथ मेरा देश जायेगा? बकसीस मिलेगा पूरा। चलेगा? पगलू जमादार मुझे आँखों के इशारे से कहता है—बाबू, उसके साथ मत जाइयेगा। उसके बक्शे में नेपाली गाँजा भरा हुआ है! कामरूप कमिच्छा की ओर से फिर एक स्पेशल ट्रेन आ रही है। प्रतीक्षालय का बूढ़ा चौकीदार पोपली हँसी हँसता हुआ मुझसे कहता है—साहब, आपकी गाड़ी आ रही है। रेडियो पर 'जन मण गन' गाया जा रहा है यानी स्टेशन अब बन्द हो रहा है। 'तव शुभ नामे' के पास रेकार्ड कटा हुआ है, शायद। 'तव शुभ नामे—तव शुभ नामे' बार-बार बज रहा है!

[सारिका / जुलाई 1971]

एक रंगबाज गाँव की भूमिका

सड़क खुलने और बस 'सर्विस' चालू होने के बाद से सात नदी (और दो जंगल) पार का पिछलपाक इलाके के हलवाहे-चरवाहे भी 'चालू' हो गये हैं···! 'ए रोक्-के !' कहकर 'बस' को कहीं पर रोका जा सकता है और 'ठें-व्हेय !' कहकर 'बस' की देह पर दो थाप लगा देते ही गाड़ी चल पड़ती है—इस भेद को गाँव का बच्चा-बच्चा जान गया है। और मिडिल फेल करके गाँव-भर में सबसे बेकार बने छोकरे हाथ में एक 'एकमरसाइज-बुक' लेकर, चुस्त पैण्ट-बुशर्ट पहनकर दिन-भर, जहाँ तक जी चाहे, बस में बैठ-कर 'स्टुडेण्टगिरी' कर आते हैं। किन्तु, पिछलपाक इलाके का रंगदा गाँव अचानक इतना 'चालू' हो जायेगा—यह किसको मालूम था ?

सदर शहर से सड़क के द्वारा जुड़ जाने के बाद जब महानन्दा प्रोजेक्ट का काम शुरू हुआ, उसके पहले ही रंगदा गाँव में प्रोजेक्ट का 'इन्स्पेक्शन बँगला' बन चुका था। डाक बँगला या होटिल बँगला (हॉल्टिंग बँगला) कहने पर रंगदा गाँव के गँवार भी हँसते हैं—"देखो 'आइबी' को होटिल बँगला कहता है !"

आइबी के मकान बनने के पहले ही चारों ओर गुलमुहर के पेड़ों के छतनार हो चुके थे और कई तो फूलने भी लगे थे। अब तो गुलमुहर फूलने के मौसम में दूर से ही, रंगदा गाँव के आकाश की रंगीनी को देखकर लोग पहचान लेते हैं—'वह रहा···लाल रंग का रंगदा गाँव !'

रंगदा गाँव और इसके निवासियों को 'चालू' करने का श्रेय रंगदा 'आइबी' और गुलमुहर के सैंकड़ो पेडो को ही है।

दो साल पहले प्रोजेक्ट के चीफ इंजिनियर के साथ एक बंगाली दोस्त आये थे। उन्होंने दो-तीन दिनो तक बैलगाडियो मे रंगदा गाँव के आस-पास चक्कर काटने के बाद अपने इजिनियर मित्र से पूछा था—"गाँव का नाम पहले से ही रंगदा था या आप लोगो ने दिया है? ··एक ओर तीन पतली नदियो का सगम, दूसरी ओर बाँस के पुराने जंगल, तीसरी ओर कोसो फैली परती धरती। और, इसके मध्य बसा यह गाँव और आपका यह 'आइबी' ···हर नदियो मे असख्य कमल-फूल और आकाश मे मँडराते नाना रग वर्ण के पखेरुओ के झुण्ड····'की सुन्दर जायगा!' (कैसी सुन्दर जगह!)···मैं बहुत 'इन्सपायर' हूँ, सिंघ जी। मैं आपको धन्यवाद देता हूँ कि आपने मुझे ऐसी जगह का पता दिया।"

इजिनियर साहब के बगाली दोस्त दो सप्ताह तक 'आइबी' मे रहे। कमरे मे दिन-भर चुपचाप बैठकर लिखते थे और शाम को 'आइबी' के चौकीदार के बातूनी चाचा के साथ परमान नदी के तिमुहाने पर जाते थे। कभी बाँस वन के आसपास चक्कर लगाते और किमी दिन जीप लेकर परती-मैदान की ओर चले जाते।

दो सप्ताह के बाद वे चले गये। किन्तु, दो महीने के बाद ही 'धनकटनी' के दिनो—अगहन महीने के शुरू मे ही—अपने पूरे दल-बल के साथ आ धमके तीन 'डिलक्स बस' मे भरकर कलकत्ता के 'फिलिमवाले'! तब जाकर मालूम हुआ कि इंजिनियर साहब के बगाली दोस्त 'फिलिम' बनानेवाले डाइरेक्टर साहेब हैं।

पन्द्रह-बीस दिनो तक गाँव मे किसी ने कोई काम नही किया। अगर किया भी तो मुफ्त में ही इतनी मजदूरी मिलती कि उन्हे भ्रम होने लगता कि 'नोट' जाली तो नही!···आइबी के झक्कू पासवान चौकीदार के बातूनी चाचा बैंगाई पासवान को तो बजाप्ता 'पाट' ही दे दिया और 'देबी दुर्गा'-जैसी रूपवती लड़की से (अरे देखो-देखो, सिनेमा की हिरोइन को लडकी कहता है?) रू-ब-रू बात कराकर फोटो लिया और जाते समय साथ-साथ कलकत्ता ले गया। बैंगाई अब कलकत्ता मे ही रहता है।···बासमती

मुसम्मात की बेटी जमुनिया की तस्वीर—पानी में पैठाकर, लिया साड़ी के साथ एक सौ रुपये का एक नम्बरी नोट।···तेतरी दीदी की दीवार पर—हाथी-घोड़ा-मयूर-तोता और फूल आँके देखकर डाइरेक्टर साहब 'लूट्टू' हो गये—तेतरी दीदी के नंगे बेटे को ओसारे पर बैठाकर फोटो लिया··· लौंडा रोये तो भी फोटो खिंचाता था और हँसता भी तो फोटो छापनेवाली मशीन—कुर्र-कुर्र-कुर्र फोटो छापती जाती!···सन्तूदास को काम मिला था कि लाल झण्डी देखते ही परमान के कुण्ड में ढेला फेंके। ढेला फेंकते ही हजारों-हजार पंछी पाँखें फड़फड़ाकर उड़ते, उड़ने लगते। उधर दनादन फोटो होता रहता। मँहगू की दो घुर जमीन का सरसों बर्बाद हुआ तो पाँच सौ रुपये हर्जाने में मिले।

जिस दिन वे लोग जाने लगे—गाँव के लोग उदास हो गये। बेंगाई पासवान ने सभी को भरोसा दिया था—'बाबू लोग बोलते हैं कि फिर आवेंगे।'

सचमुच, बेंगाई ने ठीक ही कहा था। तीन-चार महीने के बाद, बेंगाई कलकत्ते से लौटा, तो गाँव के लोग पहले उसको पहचान ही नहीं सके। बड़े-बड़े बाबू-बबूआन की तरह 'धोती-अंगरखा' पहने, आँख पर चश्मा।··· दो बक्सा कपड़ा ले आया था, अपने भतीजे-भतीजी और नाती-पोतों के लिए। बेंगाई बोला—"अरे भैया! अपने रंगदा गाँव ने तो सिनेमावालों पर ऐसा रंग डाल दिया है कि अब इस गाँव में जो भी हो जाये, अचरज मत करना। बंगाली बाबुओं ने कलकत्ता में जाकर रंगदा की इतनी तारीफ शुरू कर दी कि मैं भी हैरत में पड़ गया। कहते थे—रंगदा गाँव के दूध पर ऐसी मोटी छाली पड़ती है, वहाँ की मछली-जैसा स्वाद कलकत्ते में कभी नहीं पाओगे।···और आदमी लोगों की भी तारीफ करते थे।" सो, जान लो! इस बार दूसरे साहब आ रहे हैं। यह जरा दूसरे 'सुभाव' के आदमी हैं। मगर घबड़ाने की बात नहीं। यह भी भले आदमी हैं। ये रंगीन मेला बनायेंगे—इसीलिए गुलमुहर और सेमल फूल के मौसम में आवेंगे।" मैं यहाँ से तार करूँगा और दूसरे ही दिन सभी दनादन पहुँचते जायेंगे। हाँ, ये साहब हम लोगों के 'सिरुआ पर्व' के धूमधाम और 'नन्ही-मुन्ही नाच' की शूटिंग करेंगे। अजी, शूटिंग का मतलब वही है जो फोटो छापने का।

लेकिन दूसरे गाँव का आदमी जो कुछ भी कहे—अपने गाँव के लोगों को इसका मतलब समझा दो। शूटिंग, हीरो, हिरोइन, कैमरा और लोकेशन··· सबका 'अरथ' समझ लो।···सरसतिया की माँ से कहो कि सरसतिया का नाम अब 'लक्ष्मी' रख दे। उसकी आँखों की छापी की वहाँ इतनी तारीफ हुई है कि इस कम्पनी के डाइरेक्टर साहब ने अपने खेला की 'लछमी' का काम सरसतिया से ही करवाने का फैसला किया है।·· पाँच हजार! पूरा पाँच हजार! बोल, सरसतिया की माँ? अब भी बेंगाई पासवान को 'करमजरवा' कहेगी?"

नहीं-नहीं, अब बेंगाई को करमजरुआ या कामचोर कौन कह सकता है? सूरज पर कौन थूक सकता है? दिन-भर खैनी खाकर 'बकर-बकर' करनेवाले बातूनी बेंगाई की बात की इतनी कीमत! वह जो कुछ बोलता है, डाइरेक्टर साहब एक छोटी बही मे 'चट' टीप लेते हैं। कितना किस्सा-कहानी, कितना गीत-भजन, कितना फिकरा-मुहावरा·· ।

सिरुआ-पर्व के ठीक पांच दिन पहले ही कलकतिया बाबू लोग पहुँच गये। दल मे कुछ पुराने लोग थे, कुछ नये। पहलेवाली हिरोइन के साथ एक हिरोइन और आयी है। गाँव गुलजार है!

सारे गाँव मे सिरुआ-पर्व मनाने का खर्च कम्पनीवालो ने दिया है। कोई घर ऐसा नही, जिसकी दीवारो पर तेतरी दीदी के हाथ के बने हुए फूल-पत्ते, हाथी-घोड़े न बने हों। तेतरी दीदी को भी डाइरेक्टर साहब कलकत्ता ले जायेंगे। कह रहे थे कि उसको सरकार से 'बकसीस' दिलायेंगे।

एक बात और खास है, रंगदा गाँव मे। इस जिले मे बस इसी इलाके और गाँव मे 'थारू-कोच' जाति के लोग रहते हैं। इसीलिए 'पहरावे-ओढ़ावे' से लेकर 'पर्व-त्योहार' भी सभी के लिए नये लगते हैं। औरतें पर्दा नही करती। स्वस्थ होती हैं!

नये डायरेक्टर साहब ने सरसतिया का पहले बाँस वन की छाया मे गाय के बछड़े के साथ दौड़ाकर 'शूटिंग' लिया। फिर, धान कूटते समय—ढेंकी के ताल पर गीत गाते हुए। कलकत्ते से आयी हुई छोटी हिरोइन के साथ झूला झूलते हुए।···धन्य है। धन्य है!!

तब से रंगदा गाँव इतना 'चालू' हो गया है कि इस गाँव मे सीधे

कलकत्ते से महीने मे चार-पाँच मनीआर्डर आते है। बेंगाई पासवान के अलावा सरसतिया और उसकी माँ, उसका बड़ा भाई भी कलकत्ता गया है। तेतरी दीदी की खुशामद एक ओर उसका बाप करता है—दूसरी ओर उसका बूढ़ा ससुर भी दिन-रात आकर रोता-गाता है।···गाँव का रंग ही बदल गया है, तब से!

इसलिए, रंगदा गाँव के लड़के क्यों न अपने को रंगबाज कहें?···

असल मे, इस गाँव के बारे मे इतनी 'भूमिका' बाँधने की जरूरत आ पड़ी थी। इस बार सरसतिया का छोटा भाई कलकत्ते से, होली के पहले घर आ रहा था। कटिहार जंक्शन पर पुलिसवालों को कुछ सन्देह हुआ, तो पकड़ लिया। पूछा—कहाँ घर? तो, जवाब दिया—रंगदा का 'रंगबाज' हूँ। यह रंगबाज क्या है?···तुम्हारे पास इतने पैसे कहाँ से आये? तो, छोकरे ने सिगार सुलगाते हुए, लापरवाही से कहा—मैं हिरोइन का छोटा भाई हूँ—'रंगबाज' फिल्म का नाम सुना है? अभी यहाँ नहीं आया है? आयेगा तो देखिएगा।···अबकि हमको भी 'चान्स' मिलनेवाला है।

पुलिसवालों ने उसको 'रंगबाज' अर्थात् गुण्डा अथवा नक्सली समझकर चलान करना चाहा। किन्तु, उस लड़के ने 'तार' देकर बेंगाई दास को गाँव से बुला लिया। और बेंगाई ने आकर अपने गाँव रंगदा की भूमिका बाँधी, तभी जाकर उसको छुट्टी मिली।

दरोगा ही नहीं, एस. पी. साहब के लड़के और लड़कियाँ भी उस दिन से बेंगाई की खुशामद कर जाते हैं—रंगदा गाँव मे आकर—"बेंगाई दादा! एक बार 'चान्स' दिला दो। जिन्दगी-भर गुलामी कर दूँगा···।"

बेंगाई दास किसी को भरोसा नहीं दे सकता है।···कैसे दे सकता है? यह तो रंगदा गाँव की महिमा है कि आज बेंगाई दास की तस्वीर सिनेमा के अखबारों मे छपती है।

[ज्योत्स्ना / सितम्बर 1972]

संवदिया

हरगोबिन को अचरज हुआ—तो, आज भी किसी को संवदिया की जरूरत पड़ सकती है! इस जमाने में, जबकि गाँव-गाँव में डाकघर खुल गये हैं, संवदिया के मार्फत सवाद क्यों भेजेगा कोई? आज तो आदमी घर बैठे ही लंका तक खबर भेज सकता है और वहाँ का कुशल-सवाद मँगा सकता है। फिर उसकी बुलाहट क्यों हुई?

हरगोबिन बड़ी हवेली की टूटी ड्योढ़ी पार कर अन्दर गया। सदा की भाँति उसने वातावरण को सूँघकर संवाद का अन्दाज लगाया।...निश्चय कोई गुप्त समाचार ले जाना है। चाँद-सूरज को भी नहीं मालूम हो। परेवा-पंछी तक न जाने।

"पाँव लागी बड़ी बहुरिया!"

बड़ी हवेली की बड़ी बहुरिया ने हरगोबिन को पीढ़ी दी और आँख के इशारे से कुछ देर चुपचाप बैठने को कहा। बड़ी हवेली अब नाममात्र को ही बड़ी हवेली है। जहाँ दिन-रात नौकर-नौकरानियों और जन-मजदूरों की भीड़ लगी रहती थी, वहाँ आज हवेली की बड़ी बहुरिया अपने हाथ से सूपा में अनाज लेकर झटक रही है। इन हाथों में सिर्फ मेंहदी लगाकर ही गाँव की नाइन परिवार पालती थी। कहाँ गये वे दिन? हरगोबिन ने लम्बी साँस ली।

बड़े भैया के मरने के बाद ही जैसे सब खेल खत्म हो गया। तीनों

भाइयो ने आपस मे लडाई-झगडा शुरू किया। रैयतो ने जमीन पर दावे करके दखल किया। फिर, तीनो भाई गाँव छोड़कर शहर मे जा बसे, रह गयी बडी बहुरिया—कहाँ जाती बेचारी! भगवान् भले आदमी को ही कष्ट देते हैं। नही तो एक घण्टे की बीमारी मे बड़े भैया क्यो मरते?···बडी बहुरिया की देह से जेवर खींच-छीनकर बँटवारे की लीला हुई थी, हरगोबिन ने देखी है अपनी आँखों से द्रौपदी-चीर-हरण लीला! बनारसी साडी को तीन टुकडे करके बँटवारा किया था, निर्दय भाइयो ने। बेचारी बडी बहुरिया!

गाँव की मोदिआइन बूढ़ी न जाने कब से आँगन मे बैठकर बड़-बडा रही थी—उधार का सौदा खाने में बड़ा मीठा लगता है और दाम देते समय मोदिआइन की बात कडवी लगती है। मैं आज दाम लेकर ही उठूँगी।

बडी बहुरिया ने कोई जवाब नही दिया।

हरगोबिन ने फिर लम्बी साँस ली। जब तक यह मोदिआइन आँगन से नही टलती, बडी बहुरिया हरगोबिन से कुछ नही बोलेगी। वह अब चुप नही रह सका, "मोदिआइन काकी, बाकी-बकाया वसूलने का यह काबुली-कायदा तो तुमने खूब सीखा है।"

'काबुली कायदा' सुनते ही मोदिआइन तमककर खडी हो गयी, "चुप रह मुँहझौंसे! निमोछिये ···!"

"क्या करूँ काकी, भगवान् ने मूँछ-दाढ़ी दी नही, न काबुली आगा साहब की तरह गुलजार दाढ़ी···!"

"फिर काबुल का नाम लिया तो जीभ पकडकर खींच लूँगी।"

हरगोबिन ने जीभ बाहर निकालकर दिखलायी। अर्थात्—खींच ले।

···पाँच साल पहले गुल मुहम्मद आगा उधार कपडा लगाने के लिए गाँव मे आता था और मोदिआइन के ओसारे पर दुकान लगाकर बैठता था। आगा कपडा देते समय बहुत मीठा बोलता और वसूली के समय जोर-जुल्म से एक का दो वसूलता। एक बार कई उधार लेनेवालो ने मिलकर काबुली की ऐसी मरम्मत कर दी कि फिर लौटकर गाँव मे नही आया। लेकिन इसके बाद ही दुखनी मोदिआइन लाल मोदिआइन हो गयी।···काबुली क्या, काबुली बादाम के नाम से भी चिढ़ने लगी मोदिआइन! गाँव

के नाचनेवालो ने नाच मे काबुली का स्वांग किया था : 'तुम अमारा मुलुक जायगा मोदिआइन ? अम काबुली बादाम-पिस्ता-अकरोट किलायगा···!'

मोदिआइन बड़बड़ाती, गाली देती हुई चली गयी तो बड़ी बहुरिया ने हरगोबिन से कहा, "हरगोबिन भाई, तुमको एक संवाद ले जाना है। आज ही बोलो, जाओगे न ?"

"कहाँ ?"

"मेरी माँ के पास !"

हरगोबिन बडी बहुरिया की छलछलायी आंखो मे डूब गया, "कहिए, क्या सवाद है ?"

संवाद सुनाते समय बड़ी बहुरिया सिसकने लगी। हरगोबिन की आँखें भी भर आयी।···बड़ी हवेली की लक्ष्मी को पहली बार इस तरह सिसकते देखा है हरगोबिन ने। वह बोला, "बड़ी बहुरिया, दिल को कड़ा कीजिए।"

"और कितना कड़ा करूँ दिल ? माँ से कहना मैं भाई-भाभियो की नौकरी करके पेट पालूंगी। बच्चो के जूठन खाकर एक कोने मे पडी रहूँगी, लेकिन यहाँ अब नही···अब नही रह सकूंगी।' कहना, यदि माँ मुझे यहाँ से नही ले जायेगी तो मैं किसी दिन गले मे घड़ा बाँधकर पोखरे मे डूब मरूँगी।···बथुआ-साग खाकर कब तक जीऊँ ? किसलिए·· किसके लिए ?"

हरगोबिन का रोम-रोम कलपने लगा। देवर-देवरानियाँ भी कितने बेदर्द है। ठीक अगहनी धान के समय बाल-बच्चो को लेकर शहर से आयेंगे। दस-पन्द्रह दिनो मे कर्ज-उधार की ढेरी लगाकर, वापस जाते समय दो-दो मन के हिसाब से चावल-चूड़ा ले जायेंगे। फिर आम के मौसम मे आकर हाजिर। कच्चा-पक्का आम तोड़कर बोरियो मे बन्द करके चले जायेंगे। फिर उलटकर कभी नही देखते·· राक्षस हैं सब !

बड़ी बहुरिया आंचल के खूंट से पाँच रुपये का एक गन्दा नोट निकालकर बोली, "पूरा राह खर्च भी नही जुटा सकी। आने का खर्चा माँ से माँग लेना। उम्मीद है, भैया तुम्हारे साथ ही आवेंगे।"

हरगोबिन बोला, "बड़ी बहुरिया, राह-खर्च देने की जरूरत नही। मैं इन्तजाम कर लूंगा।"

"तुम कहाँ से इन्तजाम करोगे ?"

"मैं आज दस बजे की गाड़ी से ही जा रहा हूँ।"

बड़ी बहुरिया हाथ में नोट लेकर चुपचाप, भाव शून्य दृष्टि से हरगोबिन को देखती रही। हरगोबिन हवेली से बाहर आ गया। उसने सुना, बड़ी बहुरिया कह रही थी, "मैं तुम्हारी राह देख रही हूँ।"

संवदिया! अर्थात् सन्देशवाहक!

हरगोबिन संवदिया!···संवाद पहुँचाने का काम सभी नहीं कर सकते। आदमी भगवान् के घर से ही संवदिया बनकर आता है। संवाद के प्रत्येक शब्द को याद रखना, जिस सुर और स्वर में संवाद सुनाया गया है, ठीक उसी ढंग से जाकर सुनाना, सहज काम नहीं। गाँव के लोगों की गलत धारणा है कि निठल्ला, कामचोर और पेटू आदमी ही संवदिया का काम करता है। न आगे नाथ, न पीछे पगहा। बिना मजदूरी लिये ही जो गाँव-गाँव संवाद पहुँचावे, उसको और क्या कहेंगे!···औरतों का गुलाम। जरा-सी मीठी बोली सुनकर ही नशे में आ जाये, ऐसे मर्द को भी भला मर्द कहेंगे? किन्तु, गाँव में कौन ऐसा है, जिसके घर की माँ-बहू-बेटी का संवाद हरगोबिन ने नहीं पहुँचाया है।···लेकिन ऐसा संवाद पहली बार ले जा रहा है वह।

गाड़ी पर सवार होते ही हरगोबिन को पुराने दिनों और संवादों की याद आने लगी। एक करुण-गीत की भूली हुई कड़ी फिर उसके कानों के पास गूँजने लगी :

"पैयाँ पड़ूँ दाढ़ी धरूँ···

हमरो संवाद ले ले जाहु रे संवदिया-या-या!···"

बड़ी बहुरिया के संवाद का प्रत्येक शब्द उसके मन में काँटे की तरह चुभ रहा है—किसके भरोसे यहाँ रहूँगी? एक नौकर था, वह भी कल भाग गया। गाय खूँटे में बँधी भूखी-प्यासी हिकर रही है। मैं किसके लिए इतना दुःख झेलूँ?

हरगोबिन ने अपने पास बैठे हुए एक यात्री से पूछा, "क्यों भाई साहेब, थाना बिहपुर में डाकगाड़ी रुकती है या नहीं?"

यात्री ने मानो कुढ़कर कहा, "थाना बिहपुर में सभी गाड़ियाँ रुकती हैं।"

हरगोविन ने भाँप लिया, यह आदमी चिड़चिड़े स्वभाव का है, इससे कोई बातचीत नहीं जमेगी। वह फिर बड़ी बहुरिया के संवाद को मन-ही-मन दुहराने लगा। ' लेकिन, सवाद सुनाते समय वह अपने कलेजे को कैसे सँभाल सकेगा ! बड़ी बहुरिया सवाद कहते समय जहाँ-जहाँ रोयी है, वहाँ भी रोयेगा !

कटिहार जंक्शन पहुँचकर उसने देखा, पन्द्रह-बीस साल में बहुत कुछ बदल गया है। अब स्टेशन पर उतरकर किसी से कुछ पूछने की कोई जरूरत नहीं। गाड़ी पहुँची और तुरन्त भोंपे से आवाज अपने-आप निकलने लगी—थाना बिहपुर, खगड़िया और बरौनी जानेवाले यात्री तीन नम्बर प्लेटफार्म पर चले जायें। गाड़ी लगी हुई है।

हरगोविन प्रसन्न हुआ—कटिहार पहुँचने के बाद ही मालूम होता है कि सचमुच सुराज हुआ है। इसके पहले कटिहार पहुँचकर किस गाड़ी में चढ़ें और किधर जायें, इस पूछताछ में ही कितनी बार उसकी गाड़ी छूट गयी है।

गाड़ी बदलने के बाद फिर बड़ी बहुरिया का करुण मुखड़ा उसकी आँखों के सामने उभर गया—'हरगोविन भाई, माँ से कहना, भगवान् ने आँखें फेर लीं, लेकिन मेरी माँ तो है···किसलिए··· किसलिए··· मैं बथुआ-साग खाकर कब तक जीऊँ ?'

थाना बिहपुर स्टेशन पर जब गाड़ी पहुँची तो हरगोविन का जी भारी हो गया। इसके पहले भी कई भला-बुरा सवाद लेकर वह इस गाँव में आया है, कभी ऐसा नहीं हुआ। उसके पैर गाँव की ओर बढ़ ही नहीं रहे थे। इसी पगडण्डी से बड़ी बहुरिया अपने मैके लौट आवेगी। गाँव छोड़कर चली जावेगी। फिर कभी नहीं जायेगी !

हरगोविन का मन कलपने लगा—तब गाँव में क्या रह जायेगा ? गाँव की लक्ष्मी ही गाँव छोड़कर चली आवेगी ! ··किस मुँह से वह ऐसा संवाद सुनायेगा ? कैसे कहेगा कि बड़ी बहुरिया बथुआ-साग खाकर गुजर कर रही है।···सुननेवाले हरगोविन के गाँव का नाम लेकर थूकेंगे—कैसा गाँव है, जहाँ लक्ष्मी-जैसी बहुरिया दुःख भोग रही है !

अनिच्छापूर्वक हरगोविन ने गाँव में प्रवेश किया।

हरगोबिन को देखते ही गाँव के लोगों ने पहचान लिया—जलालगढ़ गाँव का संवदिया आया है ! ···न जाने क्या संवाद लेकर आया है !

"राम-राम भाई ! कहो, कुशल समाचार ठीक है न ?"

"राम-राम भैयाजी। भगवान की दया से आनन्दी है।"

"उधर पानी-बूँदी पड़ा है ?"

बड़ी बहुरिया के बड़े भाई ने पहले हरगोबिन को नहीं पहचाना। हरगोबिन ने अपना परिचय दिया, तो उन्होंने सबसे पहले अपनी बहिन का समाचार पूछा, "दीदी कैसी है ?"

"भगवान की दया से सब राजी-खुशी है।"

मुँह-हाथ धोने के बाद हरगोबिन की बुलाहट आँगन में हुई। अब हरगोबिन काँपने लगा। उसका कलेजा धड़कने लगा ···ऐसा तो कभी नहीं हुआ ? ···बड़ी बहुरिया की छलछलायी हुई आँखें ! सिसकियों से भरा हुआ संवाद ! उसने बड़ी बहुरिया की बूढ़ी माता को पाँवलागी की।

बूढ़ी माता ने पूछा, "कहो बेटा, क्या समाचार है ?"

"मायजी, आपके आशीर्वाद से सब ठीक है।"

"कोई संवाद ?"

"एँ ? ···संवाद ? ···जी, संवाद तो कोई नहीं। मैं कल सिरसिया गाँव आया था, तो सोचा कि एक बार चलकर आप लोगों का दर्शन कर लूँ।"

बूढ़ी माता हरगोबिन की बात सुनकर कुछ उदास-सी हो गयी, "तो तुम कोई संवाद लेकर नहीं आये हो ?"

"जी नहीं, कोई संवाद नहीं।···ऐसे बड़ी बहुरिया ने कहा है कि यदि छुट्टी हुई तो दसहरा के समय गंगाजी के मेले में आकर माँ से भेंट-मुलाकात कर जाऊँगी।" बूढ़ी माता चुप रही। हरगोबिन बोला, "छुट्टी कैसे मिले ! सारी गृहस्थी बड़ी बहुरिया के ऊपर ही है।"

बूढ़ी माता बोली, "मैं तो बबुआ से कह रही थी कि जाकर दीदी को लिवा लाओ, यहीं रहेगी। वहाँ अब क्या रह गया है ? जमीन-जायदाद तो सब चली ही गयी। तीनों देवर अब शहर में जाकर बस गये हैं। कोई खोज-खबर भी नहीं लेते। मेरी बेटी अकेली···!"

"नही मायजी ! जमीन-जायदाद अभी भी कुछ कम नही। जो है, वही बहुत है। टूट भी गयी है, तो आखिर बड़ी हवेली ही है। 'सवाग' नही है, यह बात ठीक है। मगर, बड़ी बहुरिया का तो सारा गाँव ही परिवार है। हमारे गाँव की लक्ष्मी है बड़ी बहुरिया।···गाँव की लक्ष्मी गाँव को छोड़कर शहर कैसे जायेगी ? यों, देवर लोग हर बार आकर ले जाने की जिद्द करते हैं।"

बूढ़ी माता ने अपने हाथ हरगोबिन को जलपान लाकर दिया, "पहले थोड़ा जलपान कर लो, बबुआ।"

जलपान करते समय हरगोबिन को लगा, बड़ी बहुरिया दालान पर बैठी उसकी राह देख रही है—भूखी-प्यासी··! रात मे भोजन करते समय भी बड़ी बहुरिया मानो सामने आकर बैठ गयी ··कर्ज-उधार अब कोई देते नही।·· एक पेट तो कुत्ता भी पालता है। लेकिन मैं ?···माँ से कहना·· !!

हरगोबिन ने थाली की ओर देखा—दाल-भात, तीन किस्म की भाजी, घी, पापड़, अचार।···बड़ी बहुरिया बथुआ-साग उबालकर खा रही होगी।

बूढ़ी माता ने कहा, "क्यो बबुआ, खाते क्यो नही ?"

"मायजी, पेट-भर जलपान जो कर लिया है।"

"अरे, जवान आदमी तो पाँच बार जलपान करके भी एक थाल भात खाता है।"

हरगोबिन ने कुछ नही खाया। खाया नही गया।

सवदिया डटकर खाता है और 'अफर' कर सोता है, किन्तु हरगोबिन को नींद नही आ रही है।···यह उसने क्या किया ? क्या कर दिया ? वह किसलिए आया था ? वह झूठ क्यों बोला ?···नही, नही, सुबह उठते ही वह बूढ़ी माता को बड़ी बहुरिया का सही संवाद सुना देगा—अक्षर-अक्षर : 'मायजी, आपकी इकलौती बेटी बहुत कष्ट मे है। आज ही किसी को भेजकर बुलवा लीजिए। नही तो वह सचमुच कुछ कर बैठेगी। आखिर, किसके लिए वह इतना सहेगी !···बड़ी बहुरिया ने कहा है, भाभी के बच्चों के जूठन खाकर वह एक कोने मे पड़ी रहेगी···!'

रात-भर हरगोबिन को नींद नहीं आयी।

आँखों के सामने बड़ी बहुरिया बैठी रही—सिसकती, आँसू पोंछती हुई। सुबह उठकर उसने दिल को कड़ा किया। वह संवदिया है। उसका काम है सही-सही संवाद पहुँचाना। वह बड़ी बहुरिया का संवाद सुनाने के लिए बूढ़ी माता के पास जा बैठा। बूढ़ी माता ने पूछा, "क्या है, बबुआ? कुछ कहोगे?"

"मायजी, मुझे इसी गाड़ी से वापस जाना होगा कई दिन हो गये।"

"अरे, इतनी जल्दी क्या है! एकाध दिन रहकर मेहमानी कर लो।"

"नहीं, मायजी। इस बार आज्ञा दीजिए। दशहरा में मैं भी बड़ी बहुरिया के साथ आऊँगा। तब डटकर पन्द्रह दिनों तक मेहमानी करूँगा।"

बूढ़ी माता बोली, "ऐसी जल्दी थी तो आये ही क्यों? सोचा था, बिटिया के लिए दही-चूड़ा भेजूँगी। सो दही तो नहीं हो सकेगा आज। थोड़ा चूड़ा है बासमती धान का, लेते जाओ।"

चूड़ा की पोटली बगल में लेकर हरगोबिन आँगन से निकला तो बड़ी बहुरिया के बड़े भाई ने पूछा, "क्यों भाई, राह-खर्च है तो?"

हरगोबिन बोला, "भैयाजी, आपकी दुआ से किसी बात की कमी नहीं।"

स्टेशन पर पहुँचकर हरगोबिन ने हिसाब किया। उसके पास जितने पैसे हैं, उससे कटिहार तक टिकट ही वह खरीद सकेगा। और यदि चौअन्नी नकली साबित हुई तो सैमापुर तक ही। ···बिना टिकट के वह एक स्टेशन भी नहीं जा सकेगा। डर के मारे उसकी देह का आधा खून सूख जायेगा।

गाड़ी में बैठते ही उसकी हालत अजीब हो गयी। वह कहाँ आया था? क्या करके जा रहा है? बड़ी बहुरिया को क्या जवाब देगा?

यदि गाड़ी में निरगुन गानेवाला सूरदास नहीं आता, तो न जाने उसकी क्या हालत होती! सूरदास के गीतों को सुनकर उसका जी स्थिर हुआ, थोड़ा—

···कि आहो रामा!
नैहर को सुख सपन भयो अब,
देस पिया को डोलिया चली···ई · ई · ई,
माई रोओ मति यही करम की गति···!!

सूरदास चला गया तो उसके मन में बैठी हुई बड़ी बहुरिया फिर रोने लगी—किसके लिए इतना दुःख सहूँ ?

पाँच बजे भोर में वह कटिहार स्टेशन पहुँचा।

भोंपे से आवाज आ रही थी—बैंगाड़ी, कुसियार और जलालगढ़ जानेवाले यात्री एक नम्बर प्लेटफार्म पर चले जायें।

हरगोबिन को जलालगढ़ जाना है, किन्तु वह एक नम्बर प्लेटफार्म पर कैसे जायेगा ? उसके पास तो कटिहार तक का ही टिकट है। ' जलालगढ़ ! बीस कोस !···बड़ी बहुरिया राह देख रही होगी।···बीस कोस की मंजिल भी कोई दूर की मंजिल है ? वह पैदल ही जायेगा।

हरगोबिन महावीर-विक्रम-बजरंगी का नाम लेकर पैदल ही चल पड़ा। दस कोस तक वह मानो 'बाई' के झोंके पर रहा। कसबा शहर पहुँचकर उसने पेट-भर पानी पी लिया। पोटली में नाक लगाकर उसने सूँघा—अहा ! बासमती धान का चूड़ा है। माँ की सौगात—बेटी के लिए। नहीं, वह इससे एक मुट्ठी भी नहीं खा सकेगा ' किन्तु, वह क्या जवाब देगा बड़ी बहुरिया को !

उसके पैर लड़खड़ाये। ' उँहूँ, अभी वह कुछ नहीं सोचेगा। अभी सिर्फ चलना है। जल्दी पहुँचना है, गाँव।···बड़ी बहुरिया की डबडबायी हुई आँखें उसको गाँव की ओर खींच रही थीं—मैं बैठी राह ताकती रहूँगी !···

पन्द्रह कोस !···माँ से कहना, अब नहीं रह सकूँगी। सोलह ··सत्रह ···अठारह जलालगढ़ स्टेशन का सिगनल दिखलायी पड़ता है ··गाँव का ताड़ सिर ऊँचा करके उसकी चाल को देख रहा है। उसी ताड़ के नीचे बड़ी हवेली के दालान पर चुपचाप टकटकी लगाकर राह देख रही है बड़ी बहुरिया—भूखी-प्यासी : 'हमरो संवाद ले ले जाहु रे संवदिया···या··· या · !!'

लेकिन, यह कहाँ चला आया हरगोबिन ? यह कौन गाँव है ? पहली साँझ में ही अमावस्या का अन्धकार। किस राह से वह किधर जा रहा है ? ·· नदी है ? कहाँ से आ गयी नदी ? नदी नहीं, खेत है।·· ये झोंपड़े हैं या हाथियों का झुण्ड ? ताड़ का पेड़ किधर गया ? वह राह भूलकर न जाने कहाँ

भटक गया । इस गाँव में आदमी नहीं रहते क्या ?...यहीं कोई रोशनी नहीं, किससे पूछे ? कहाँ, वह रोशनी है या आँखें ? वह खड़ा है या चल रहा है ? वह गाड़ी में है या धरती पर...?

"हरगोबिन भाई, आ गये ?" बड़ी बहुरिया की बोली, या कटिहार-स्टेशन का भोंपा बोल रहा है ?

"हरगोबिन भाई, क्या हुआ तुमको...?"

"बड़ी बहुरिया ?"

हरगोबिन ने हाथ से टटोलकर देखा, वह बिछावन पर लेटा हुआ है। सामने बैठी छाया को छूकर बोला, "बड़ी बहुरिया ?"

"हरगोबिन भाई, अब जी कैसा है ? लो, एक घूंट दूध और पी लो। ...मुँह खोलो...हाँ...पी जाओ। पीओ !"

हरगोबिन होश में आया।...बड़ी बहुरिया दूध पिला रही है ?

उसने धीरे-से हाथ बढ़ाकर बड़ी बहुरिया का पैर पकड़ लिया, "बड़ी बहुरिया।...मुझे माफ करो। मैं तुम्हारा संवाद नहीं कह सका।...तुम गाँव छोड़कर मत जाओ। तुमको कोई कष्ट नहीं होने दूँगा। मैं तुम्हारा बेटा ! बड़ी बहुरिया, तुम मेरी माँ, सारे गाँव की माँ हो ! मैं अब निठल्ला बैठ नहीं रहूँगा। तुम्हारा सब काम करूँगा।...बोलो, बड़ी माँ तुम...तुम गाँव छोड़कर चली तो नहीं जाओगी ? बोलो...!!"

बड़ी बहुरिया गर्म दूध में एक मुट्ठी बासमती चूड़ा डालकर मसकने लगी।...संवाद भेजने के बाद से ही वह अपनी गलती पर पछता रही थी।

[मेरी प्रिय कहानियाँ / 1973]

०००